# कुरुक्षेत्र

अक्तूबर, 1986 मूल्य : 4 रु०

वार्षिक अंक

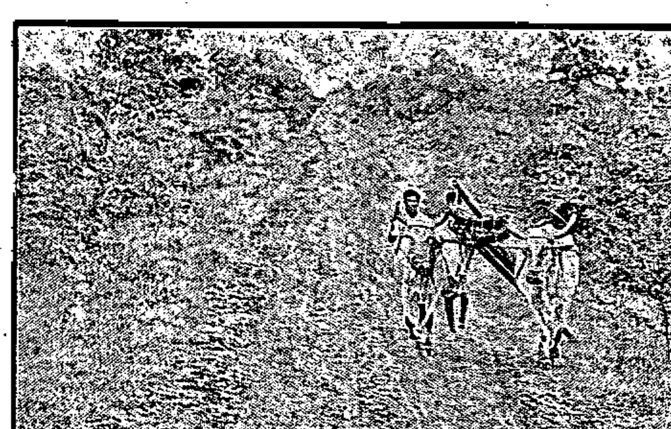

## भूमि सुधार
## उपलब्धियों का लेखा-जोखा

"आज कृषि के क्षेत्र में, खास कर उन इलाकों में जहां कृषि विकास कम हुआ है, हमें क्षेत्रीय संतुलन लाने पर ध्यान देना होगा । हमें देखना होगा कि अनुसंधान और विकास गतिविधियों के परिणाम खेतों तक पहुंचें । ये काम केवल बीजों के बारे में नहीं बल्कि पानी के इस्तेमाल, उर्वरक के उपयोग, बुवाई के समय और विभिन्न फसलों के बीच अंतर के बारे में भी होना चाहिए । हमें ध्यान देना होगा कि हम किसानों को जो कुछ बताते हैं, उसे वे अच्छी तरह समझें । ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे जान जाएं कि वे अपनी दशा सुधारने के लिए वस्तुओं का कैसे इस्तेमाल करें । और संभवतः सबसे बड़ी चुनौती उन क्षेत्रों में भूमि सुधार लागू करने की है जहां ऐसा अभी नहीं हो पाया है । यह कृषि उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण पहलू है और इस पर पूरी गंभीरता से ध्यान दिया जाना चाहिए ।"

—राजीव गांधी

# कुरुक्षेत्र

**ग्रामीण विकास का प्रमुख मासिक**

**वर्ष 31** आश्विन-कार्तिक 1908 **अंक 12**

**इस अंक में** **पृष्ठ संख्या**


| | |
|---|---|
| भारत में भूमि सुधार : एक विश्लेषण<br>**देवव्रत बंधोपाध्याय** | 4 |
| भूमि सुधार : उद्देश्य, क्रियान्वयन और प्रभाव<br>**डा.पी.आर. दुभाषी** | 16 |
| भूमि सुधार बनाम ग्रामीण विकास व निर्धनता निवारण<br>**डा. राकेश कुमार अग्रवाल** | 26 |
| जब बब्बू बाबू बन गया<br>**डा.एल.बी. बाजपेयी** | 35 |
| भूमि सुधार सभी के हित में<br>**हीरा वल्लभ शर्मा** | 38 |
| भारत में ग्रामीण गरीबी कम करने के लिए भूमि सुधार की सम्भावना<br>**कामता प्रसाद** | 42 |
| गांवों का वैभव (कविता)<br>**मोहन चन्द्र मंटन** | 45 |
| भूमि सुधार कानूनों का नया रुप<br>**नवीन चन्द्र जोशी** | 46 |
| भूमि सुधारों का सामाजिक-न्याय पक्ष और सातवीं योजना<br>**मित्रानंद कुकरेती** | 50 |
| भूमि सुधारों के राजनीतिक और आर्थिक पहलू<br>**डी. ब्राइट सिंह** | 54 |
| भारत में भूमि सुधार<br>**डा. बद्री विशाल त्रिपाठी** | 58 |


**'कुरुक्षेत्र'** के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए ।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है ।

●

**'कुरुक्षेत्र'** की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए ।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि तथा ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें ।

**दूरभाष : 382406**

**वार्षिक चन्दा : 20 रु.**

सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उपसम्पादक : घनश्याम मीणा

सहायक निदेशक (उत्पादन) : राम स्वरुप मुंजाल
आवरण पृष्ठ : जीवन अडलजा

**आवरण चित्र** फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार

# भूमि सुधार : आवश्यकता है नई दृष्टि की

भूमि सुधार सन् 1917 में स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय राजनीतिक सोच का एक अभिन्न अंग बन गया था। यह वह समय था जब महात्माजी ने चंपारन के उत्पीड़ित किसानों की आर्तनाद को सुनकर उन्हें दिये गये आदेशों का उल्लंघन करते हुए जेल जाना स्वीकार किया। "ऐसा उन्होंने कानून द्वारा स्थापित प्राधिकारी का अनादर करने के लिए नहीं बल्कि मानव अस्तित्व संबंधी उच्चतर कानून के पालन के लिए अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार किया" और वे किसानों के स्वतंत्रता प्राप्त करने तक चंपारन में ही डटे रहे। उसी समय चंपारन की तरह ही खेड़ा में भी "लगान नहीं" अभियान शुरू हो गया। महात्माजी ने किसानों से राजस्व का भुगतान न करने और उसके परिणामों को भुगतने का अनुरोध किया। यह आंदोलन सरकार द्वारा पराजय स्वीकार करने तक चलता रहा। यह उच्च विरासत है जिसके हम आज भी ऋणी हैं।

भूमि सुधार के मुख्य उद्देश्य—भूस्वामित्व के पुराने सामंती और अर्ध-सामंती ढांचे को बदलना, भू-धारण की सुरक्षा प्रदान करना और लगान तथा भूधृति की अन्य शर्तों को विनियमित करके आसामी तथा बटाईदारों के शोषण को रोकना और पुनर्वितरण संबंधी उपायों के जरिये भूमिहीन निर्धन के सामाजिक और आर्थिक स्तर में सुधार लाना रहे हैं। भूमि सुधार आधुनिकीकरण तथा कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए भी महत्वपूर्ण है।

उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हमारे देश में भूमि सुधार के विभिन्न उपाय किये गये हैं। बिचौलिये लगानदारों को हटाने के लिए कारगर कदम उठाये गये, लगान विनियमित करने और आसामी तथा बटाईदारों को भू-धारण की सुरक्षा प्रदान करने के लिए राज्यों द्वारा कानून बनाये गये जिसका अंतिम लक्ष्य उन्हें स्वामित्व के अधिकार प्रदान करना था। पुनर्वितरण संबंधी उपायों के रूप में खेती की जोतों पर हदबंदी लगाई गई और हदबंदी लगाने से प्राप्त हुई अधिशेष भूमि को ग्रामीण निर्धनों और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों में बांट दिया गया।

चकबंदी भी भूमि सुधार का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है और इसने कुछ राज्यों जैसे पंजाब और हरियाणा में तो गहरा प्रभाव छोड़ा है। भूमि अभिलेख और राजस्व प्रशासन, जो विकास के लिए नियोजन के वास्ते ठोस आधारशिला हैं, और विशेषत: किसानों और भूस्वामियों के लिए पट्टा पास बुक की व्यवस्था करने के क्षेत्र में भी राज्य सरकारों ने कारगर कदम उठाये हैं।

परन्तु इन उपायों को अमल में लाने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। सन् 1963 में पंडित नेहरू ने कहा था : "यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने लंबे समय तक इतने भूमि सुधारों को करने की कोशिशों के बावजूद अनेक स्थानों में लगानदारों को अभी तक सुरक्षा नहीं मिली है।" छठे दशक के अंत के वर्षों और सातवें दशक के आरंभ में देशभर में किसानों के संगठित असंतोष के सिलसिले में यह बात स्पष्ट होती है कि उस समय किये गये कानूनी उपाय पूरी तरह सफल नहीं हो पाये थे। इस असफलता को देखकर 1972 में भूमि सुधार संबंधी राष्ट्रीय दिशा-निर्देश सिद्धांत प्रतिपादित किये गये और पूरे देश में हदबंदी कानून का दूसरा दौर शुरू हुआ।

इन नये कानूनी उपायों को कार्यान्वित करने का काम भी धीमें और सुस्ती से चल रहा था । यह देखकर 1976 में श्रीमती इंदिरा गांधी ने मुख्यमंत्रियों से अपना रोष व्यक्त करते हुए स्पष्टत : कहा :—

"भूमि सुधार का प्रश्न हमारे लिए कोई नया नहीं है, और 20 सूत्री कार्यक्रम में इसे पहले ही शामिल किया जा चुका है क्योंकि हमारी आर्थिक और सामाजिक प्रगति में इसका आधारभूत महत्व है । भूमि सुधार उपायों के कार्यान्वयन में थोड़ी हिचक और सुस्ती बरती जा रही है, मैं समझती हूं ऐसा इसलिए है क्योंकि या तो कुछ लोग यहां ऐसे हैं जिनका सुधार न होने देने में निहित स्वार्थ है या फिर इसलिए कि लोगों को भूमि सुधार के महत्व का सामान्य बोध नहीं है ।"

हालांकि भूमि सुधार उपायों के कार्यान्वयन में थोड़ी प्रगति तो हुई ही है, परंतु अभी इस काम को पूरा होने में काफी समय लगेगा । कतिपय राज्यों में कुछेक बिचौलिये लगानदारों को समाप्त करना अब भी बाकी है । यद्यपि कुछ राज्यों में बिचौलियों के रूप में आने वाले लगान संबंधी नियम बनाये गये हैं फिर भी हम देखते हैं कि आसामी और बटाईदारों को अभी तक रिकार्ड में नहीं लाया गया है और कुछ राज्यों में आसामी और बटाईदारों को स्वामित्व संबंधी अधिकार भी दिये जाने बाकी हैं । चकबंदी कुछ ही राज्यों में कार्यान्वित की जा रही है और जब तक यह योजना विशेषकर बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में अनिवार्य नहीं की जाती, चकबंदी से होने वाले लाभ फलीभूत नहीं होंगे । चिंता का एक अन्य विषय यह है कि पिछले कुछ वर्षों से राज्यों में राजस्व प्रशासन और भूमि संबंधी रिकार्ड भूमि विकास कार्यकलापों को आगे बढ़ाने के लिए मूल रूप से जरूरी होते हैं । राज्य सरकारों को अब और समय बरबाद किये बिना इस अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र की तरफ ध्यान देने की जरूरत है ।

मैं माननीय सदस्यों की इस चिन्ता से सहमत हूं कि भूमि सुधार के मामले में राज्य सरकारों द्वारा अभी बहुत कार्य किया जाना बाकी है । भूमि सुधार के उपायों को एक नई दिशा देने और एकीकृत रूप में कार्यान्वित किये जाने वाले "गरीबी हटाओ" कार्यक्रमों के लिए इसे आधारशिला बनाने की आवश्यकता है । मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि भूमि सुधार के इन विभिन्न पहलुओं पर वे अपने बहुमूल्य विचार और सुझाव दें ताकि हम नीति-निर्धारण और कार्य रणनीति पर आम राय जुटा सकें । परन्तु, मैं आगे यह भी कहूंगा कि चूंकि भूमि राज्य का विषय है अतः कानून बनाने की जिम्मेदारी भी राज्य सरकारों पर ही जाती है । इसके लिए आवश्यक राजनीतिक इच्छा और भूमि सुधार के द्रुत कार्यान्वयन के युग का सूत्रपात करने के लिए परिवेश उत्पन्न करने की जरूरत है । मैं माननीय सदस्यों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहूंगा कि सरकार भूमि सुधार के कार्यक्रमों के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध है और इन्हें तेजी से लागू करने के लिए कारगर कदम उठाने होंगे । इस संदर्भ में मंत्रालय ने मई 1985 में राज्य के राजस्व मंत्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया था जिसमें कुछ आम राय प्राप्त हुई थी और भूमि सुधार से संबंधित विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर संस्तुतियां की गई । मैं आशा करता हूं कि राज्य सरकारें खेती के क्षेत्र में अधिक उत्पादन तथा अधिक उत्पादकता के लिए आम लोगों की प्रच्छन्न सृजनात्मक ऊर्जा को मुक्त करके भूमि सुधारों पर नया बल देने के लिए सकारात्मक रूप से कार्य करेंगी ।

---

**(नई दिल्ली में 4 जुलाई, 1986 को संसद सदस्यों की सलाहकार समिति की बैठक में कृषि मंत्री श्री गुरदयाल सिंह ढिल्लों के भाषण से)**

अनुवाद : हीरा वल्लभ शर्मा
सैक्टर-6 , क्वार्टर नं. 287,
रामकृष्ण पुरम,
नई दिल्ली-110022

# भारत में भूमि सुधार : एक विश्लेषण

देवव्रत बंधोपाध्याय

**छठी पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधारों संबंधी विभिन्न काम पूरे करने के लिए समय अवधि निश्चित की गयी थी । पट्टेदारों को स्वामित्व के अधिकार देने का कानून 1981-82 तक बनाया जाना था । सीमा लागू करने पर मिलने वाली फालतू जमीन को अधिकार में लेकर उसे बांटने का काम 1982-83 तक पूरा किया जाना था । ये दोनों काम अभी पूरे नहीं हो पाये हैं ।**

**इस निबन्ध में पट्टेदारों के पट्टे की सुरक्षा स्थिति और देश के विभिन्न भागों में अधिकतम सीमा कानून के कार्यान्वयन की समीक्षा की गयी है तथा भूमि सुधारों के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक प्रशासनिक तथा अन्य उपायों की चर्चा की गयी है ।**

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में कहा गया था, "भूमि सुधारों में संतोषजनक प्रगति न होने का कारण यह नहीं है कि नीति में कहीं कोई कमी है बल्कि कारण यह है कि इन सुधारों का ठीक से कार्यान्वयन नहीं हुआ है । अक्सर प्रभावकारी ढंग से कार्यवाही करने में दृढ़ निश्चय का अभाव देखने को मिला है । अधिकतम सीमा कानून लागू करने, जोतों की चकबंदी, छिपे तौर पर हुई पट्टेदारी के बारे में पूरी तरह छानबीन न करने तथा कानून के अन्तर्गत इन्हें पट्टेदारी/जोतदारी के अधिकार दिलाने में इस तरह का प्रयास नहीं किया गया है और इन राज्यों में पट्टेदारियों को आमतौर पर दर्ज नहीं किया गया है । पट्टेदारों और बटाईदारों का रिकार्ड तैयार न करने से पट्टे के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं हो सकती और इन लोगों को ऋण संस्थाओं से फसल-ऋण भी नहीं मिल सकता । पूर्वी अंचल में चावल के अपर्याप्त उत्पादन का एक मुख्य कारण यह बताया गया है कि वहां

बटाईदारों का रिकार्ड तैयार न करने से पट्टे के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं हो सकती और इन लोगों को ऋण संस्थाओं से फसल-ऋण भी नहीं मिल सकता । पूर्वी अंचल में चावल के अपर्याप्त उत्पादन का एक मुख्य कारण यह बताया गया है कि वहां बटाईदारों की संख्या काफी अधिक है इसलिए कृषि के लिए आवश्यक सामान और ऋण की आमद कम है तथा भूमि जल का उपयोग भी अपर्याप्त होता है क्योंकि जमीन के मालिक खेत सुधार में खर्च करने में दिलचस्पी नहीं रखते । यह बात विशेष तौर पर देखने में आयी है ।"

योजना में भूमि सुधार के विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए समय अवधि भी तय की गयी थी । कुछ अयोग्य श्रेणियों को छोड़कर बाकी सब पट्टेदारों को स्वामित्व अधिकार देने का कानून 1981-82 तक बनाया जाना था । अधिकतम सीमा से फालतू जमीन अधिकार में लेकर उसके वितरण का काम 1982-83

तक पूरा किया जाना था। ये दोनों काम अभी पूरे होने बाकी हैं।

स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिये पट्टेदारों के पट्टे की सुरक्षा की वर्तमान हालत और अधिकतम सीमा कानूनों के कार्यान्वयन के बारे में बताना आवश्यक है। जिन राज्यों में पट्टेदारी को मान्यता प्राप्त है उन सब में पट्टेदारों के पट्टे की सुरक्षा सुनिश्चित कर दी गयी है। राष्ट्रीय नीति के अनुसार पट्टेदारों के लिये पट्टे की राशि सकल उत्पाद के पांचवें से लेकर चौथे हिस्से तक देने का प्रावधान है। लेकिन आंध्रप्रदेश (आंध्र क्षेत्र), हरियाणा तथा पंजाब में पट्टे की देय राशि इससे अधिक है। कुछ अन्य राज्यों में भी शायद यही स्थिति है।

पट्टेदारों तथा बटाईदारों को आंध्र प्रदेश (आंध्र क्षेत्र) में, तथा बटाईदारों को बिहार, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में स्वामित्व अधिकार नहीं दिये गये हैं। यह देखने में आया है कि पश्चिम बंगाल में "बारगा अभियान" के अंतर्गत 13 लाख बारगादारों (बटाईदारों) को दर्ज किया गया है लेकिन बिहार या तमिलनाडु में जिन राज्यों में पट्टेदारी खत्म कर दी गयी है वहां खुद खेती करने की आड़ में जुबानी या अनौपचारिक रुप से छिपे तौर पर पट्टेदारी चल पड़ी है। राष्ट्रीय नीति में केवल कुछ खास अयोग्य करार दी गयी श्रेणियों द्वारा ही जमीन पट्टे पर दिये जाने की व्यवस्था है हालांकि कुछ राज्यों में इससे भी अधिक छूट दी गयी है। उदाहरण के तौर पर उड़ीसा में सहकारी समितियों, भगवान जगन्नाथ मंदिर, सार्वजनिक मंदिरों और ट्रस्टों को "विशेषाधिकार प्राप्त रैयत" माना गया है और ये पट्टे दें सकते हैं। इसी तरह, जिस रैयत के पास तीन मानक एकड़ (अर्थात भूमि की किस्म के अनुसार तीन एकड़ से 13.5 एकड़ तक) से अधिक जमीन नहीं है वह अपनी जमीन पट्टे पर दे सकता है। उप-पट्टेदारों और अप्रत्यक्ष रैयतों को मिल्कियत देने के लिए समय सीमा अभी तक बढ़ाई नहीं गयी है।

देश के 22 राज्यों में से मेघालय और नगालैंड में कोई भूमि सीमा कानून नहीं है। सिक्किम में शायद यह कानून लागू नहीं किया गया है। भूमि सीमा कानून सबसे पहले पांचवे और छठे दशक में बनाये गये थे और फिर 1972 में राष्ट्रीय निर्देश जारी होने के पश्चात इनमें संशोधन किया गया था।

भूमि सीमा कार्यक्रम बनने के बाद संशोधन-पूर्व तथा संशोधित सीमा कानूनों के अन्तर्गत कुल 29 लाख 70 हजार हैक्टेयर जमीन फालतू घोषित की गयी है। इसमें से 23 लाख 60 हजार हैक्टेयर को हाथ में ले लिया गया है और 18 लाख 20 हजार हैक्टेयर जमीन 33 लाख 70 हजार लोगों में बांट दी गयी है। फालतू घोषित क्षेत्र में से 79.35 प्रतिशत का कब्जा ले लिया गया है और 61.29 प्रतिशत क्षेत्र संशोधित तथा पूर्व संशोधित कानूनों के अधीन वितरित कर दिया गया है। इस वितरित जमीन में से 43.61 प्रतिशत क्षेत्र अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों में वितरित हुआ है जो कि फालतू भूमि वितरण से लाभान्वित लोगों का 54.63 प्रतिशत है। फालतू घोषित 11 लाख 50 हजार हैक्टेयर जमीन का वितरण नहीं हुआ है। इसमें से 6 लाख 60 हजार हैक्टेयर जमीन मुकदमों में उलझी हुई है और 3 लाख 50 हजार हैक्टेयर जमीन के बारे में बताया गया है कि वह या तो खेती योग्य नहीं है या फिर वनों अथवा सार्वजनिक कामों कि लिए सुरक्षित है।

वास्तविक खेती वाली जोतों की गणना के अनुसार भूमि के पुनर्वितरण और पुश्तैनी हक के फलस्वरूप दो हैक्टेयर क्षेत्र से कम ऐसी जोतों की संख्या बढ़ गयी है लेकिन विभिन्न आकार की वास्तविक खेती वाली जोतों का बेतरतीब वितरण अभी जारी है। सन् 1970-71 में दो हैक्टेयर से कम क्षेत्र वाली जोतों की संख्या चार करोड़ 96 लाख 30 हजार थी जो 1980-81 में बढ़कर 6 करोड़ 66 लाख हो गयी। सन् 1980-81 में ये कुल जोतों का 74.5 प्रतिशत थी लेकिन कुल कृषिगत क्षेत्र का केवल चार करोड़ 27 लाख 60 हजार हैक्टेयर अथवा 26.3 प्रतिशत थी। इसकी तुलना में 10 हैक्टेयर से अधिक क्षेत्र वाली जोतों की संख्या 1970-71 में 27 लाख 70 हजार से घटकर 1980-81 में 21 लाख 50 हजार रह गयीं। ये 1980-81 में कुल जोतों का 2.4 प्रतिशत थी लेकिन कुल कृषिगत क्षेत्र का तीन करोड़ 71 लाख 30 हजार हैक्टेयर अर्थात 22.8 प्रतिशत थी।

तालिका-1 की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मामूली कृषिगत जोतों की संख्या बहुत बढ़ी है और 1970-71 में 3 करोड़ 62 लाख से बढ़कर 1980-81 में 5 करोड़ 5 लाख 20 हजार हो गयी। फालतू जमीन का 32 लाख 40 हजार लोगों में वितरण भी इसका एक कारण है। अगर यह संख्या 1980-81 की कुल संख्या से घटा दी जाये तो भी इन सीमांतक (मामूली) किसानों की संख्या 4 करोड़ 72 लाख 80 हजार बनती है अर्थात दस वर्षों में 1 करोड़ 10 लाख 80 हजार की वृद्धि हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि औसतन हर वर्ष 11 लाख सीमांत जोतें बन रही हैं। सीमांतकरण की वार्षिक दर 3.98 अथवा चार प्रतिशत थी जो कि 1971 से 1981 के बीच ग्रामीण आबादी की 1.9 प्रतिशत की वार्षिक विकास दर से काफी अधिक थी। इससे यह संकेत

मिलता है कि यह स्थिति जायदाद के सामान्य बटवारे के कारण कम और विपन्नता के कारण अधिक बनी । एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि बड़ी जोतों की संख्या में 22.4 प्रतिशत कमी हुई और क्षेत्र 25.86 प्रतिशत कम हो गया । लेकिन यह हैरानी की बात है कि सातवें दशक के आरम्भ वाले संशोधित कानूनों के अधीन वितरित जमीन केवल 9 लाख 10 हजार हैक्टेयर ही थी, मगर सीमा कानून से बचते हुए 1 करोड़ 29 लाख 30 हजार हैक्टेयर जमीन जानबूझकर सफाई से दूसरों को सौंप दी गयी ।

कृषि गणना और अन्य आंकड़ों के आधार पर अनुमान की तुलना में वास्तव में घोषित फालतू जमीन बहुत कम है । इसके कारण हैं :

1. पांच से अधिक सदस्यों के परिवार द्वारा अधिकतम सीमा से अधिक जमीन रखने का प्रावधान ।
2. परिवार के वयस्क पुत्रों के लिए अलग-अलग अधिकतम सीमा देने का प्रावधान ।
3. सम्बद्ध व्यक्तिगत कानून के अन्तर्गत संयुक्त परिवार के प्रत्येक हिस्सेदार को सीमा के लिए अलग इकाई मानने का प्रावधान ।
4. चाय, काफी, रबर, इलायची, कोको-बागान और धार्मिक तथा धर्मार्थ संस्थाओं को सामान्य अधिकतम सीमा से छूट ।
5. सीमा कानून से बचने के लिए बेनामी हस्तांतरण ।
6. छूट का नाजायज फायदा और जमीन का गलत विवरण ।
7. सार्वजनिक पूंजीनिवेश से नव-सिंचित भूमि पर समुचित अधिकतम सीमा लागू न करना ।

**'सातवीं योजना में भूमि सुधारों को ग्रामीण विकास कार्यक्रम की मुख्य धारा में लाया गया है । अब यह ऐसा अलग कार्यक्रम नहीं रहा जिसे राजस्व विभाग ग्रामीण विकास के अन्य कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखकर चलाते रहें ।'**

वितरण में यह प्रतिबिंबित नहीं होगा क्योंकि अगर ऐसा होता तो वास्तविक कृषि वाली जोतों की संख्या कम होने की बजाय बढ़ जाती । इस प्रकार कृषि गणना से महत्वपूर्ण आंकड़े तो मिलते हैं पर कृषक समाज की वास्तविक तस्वीर सामने नहीं आ पाती । सारांश यह है कि गरीब किसान सीमांतक काफी तेजी से होता जा रहा है लेकिन सातवें दशक के आरम्भ वाले संशोधित भूमि सीमा कानून के बावजूद कुछ हाथों में जमीन के केन्द्रीयकरण पर कोई खास असर नहीं पड़ा है ।

भूमि सीमा कानून पहले-पहल पांचवे और छठे दशक में बने । सन् 1972 में राष्ट्रीय निर्देश जारी होने के बाद इनमें संशोधन किया गया । मेघालय, नगालैंड, अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह, अरूणाचल प्रदेश, गोवा, दमन व दीव तथा मिजोरम में कोइं भूमि सीमा कानून नहीं है । सिक्किम में इन्हें लागू नहीं किया गया है । राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण, कृषि गणना के आंकड़ों और प्रत्येक राज्य के लिए औसत सीमा के बारे में अनुमानों के आधार पर फालतू जमीन के अनुमान इस प्रकार थे :-

| | | (दस लाख हैक्टेयर) |
|---|---|---|
| एन.एस.एस. का 16 वां दौर | (1960-61) | 8.87 |
| एन.एस.एस. का 26 वां दौर | (1971-72) | 4.80 |
| कृषि गणना | (1970-71) | 12.10 |
| कृषि गणना | (1976-77) | 8.88 |
| राज्य सरकारों के अनुमान | | 2.35 |
| अब तक वास्तव में घोषित फालतू | | 2.94 |

घोषित फालतू जमीन खेती वाली भूमि के 2 प्रतिशत से कम है । घोषित फालतू जमीन भी मुकदमेबाजी के कारण पूरी तरह कब्जे में नहीं ली जाती ।

1980-81 की कृषि गणना के आंकड़ों के आधार पर अनुमान के अनुसार 59 लाख 50 हजार हैक्टेयर फालतू जमीन मिली है । यह संख्या अन्य अनुमानों में लगायी गयी औसत अधिकतम सीमा के इसी तरह के अनुमान के अन्तर्गत है लेकिन बागान और बागीचों के क्षेत्र अलग रखे गये हैं । इसी तरह, अगर शुष्क जमीन के लिए अधिकतम सीमा 12 हैक्टेयर मान ली जाये तो 1980-81 की कृषि गणना आंकड़े बताते हैं कि बागान और बगीचों को छोड़कर और कोई रियायत न देने से 98 लाख 40 हजार हैक्टेयर जमीन फालतू पड़ती है ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में सुखद सैद्धान्तिक परिवर्तन किया गया है । इस योजना के दृष्टिकोण पत्र में कहा गया है, ''गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रमों की जड़ उन लोगों को आय के साधन जुटाना है

जिनके पास ये साधन या तो बहुत ही कम हैं या फिर बिल्कुल नहीं हैं । अतः पुनर्वितरण भूमि सुधार और अनौपचारिक पट्टेदारों को पट्टे की सुरक्षा को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के साथ सीधे जोड़ना होगा ।''

सातवीं योजना में भी यही बात दोहरायी गयी है, ''गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रम और कृषि के आधुनिकीकरण तथा उत्पादकता बढ़ाने में भूमि सुधारों की अहम भूमिका है । भूमि के पुनर्वितरण से बड़ी संख्या में भूमिहीन गरीब ग्रामीणों को भूमि संबंधी तथा

**तालिका 1. कृषि गणना के अनुसार खेती वाली जोतों और भूमि के तुलनात्मक आंकड़े**

| कृषि भूमि की श्रेणी व आकार | खेती वाली जोतों की संख्या (दस लाख में) | | | कृषि भूमि (दस लाख हैक्टेयर) | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1970-71 | 1976-77 | 1980-81 | 1970-71 | 1976-77 | 1980-81 |
| (1) सीमांत (1 है. से कम) | 36.20 | 44.52 | 50.52 | 14.56 | 17.51 | 19.80 |
| | (50.0) | (54.5) | (56.5) | (9.0) | (10.7) | (12.2) |
| (2) छोटी (1-2 है) | 13.43 | 14.73 | 16.08 | 19.28 | 20.90 | 22.96 |
| | (18.9) | (18.10) | (18.0) | (11.9) | (12.8) | (14.1) |
| (3) अर्ध-मध्यम (3-4 है.) | 10.68 | 11.67 | 12.51 | 30.0 | 32.43 | 37.56 |
| | (15.0) | (14.3) | (14.0) | (18.5) | (19.9) | (21.2) |
| (4) मध्यम (4-10 है.) | 7.93 | 8.21 | 8.09 | 48.24 | 49.63 | 48.34 |
| | (11.2) | (10.0) | (9.1) | (29.7) | (30.4) | (29.7) |
| (5) बड़ी (10 है. और अधिक) | 2.77 | 2.44 | 2.15 | 50.06 | 42.87 | 37.13 |
| | (3.9) | (3.0) | (2.4) | (30.5) | (26.2) | (22.8) |
| सभी श्रेणियां | 71.01 | 81.57 | 89.35 | 162.14 | 163.34 | 162.79 |
| | (100.0) | (100.0) | (100.00) | (100.0) | (100.0) | (100.0) |

**नोट :** कोष्ठक की संख्या संबद्ध कालम के कुल का प्रतिशत है । 1980-81 के लिए संख्यायें अस्थायी हैं ।

**तालिका 2 : खेती वाली जोतों और कृषि क्षेत्र में गणना संबन्धी अंतर**

| खेती की जोतों की श्रेणी व आकार | 1970-71 की तुलना में 1980-81 में कृषि जोतों की संख्या में वृद्धि/कमी (दस लाख में) | | 1970-71 की तुलना में 1980-81 में कृषि क्षेत्र में वृद्धि/कमी (दस लाख है.) | |
|---|---|---|---|---|
| सीमांत (1 है. से कम) | 14.32 | (5.5) | 5.24 | (3.2) |
| छोटी (1-2 है.) | 2.65 | (0.9) | 3.68 | (2.2) |
| अर्ध-मध्यम (3-4 है.) | 1.83 | (-1.0) | 4.56 | (2.7) |
| मध्यम (4–10 है.) | 0.16 | (–2.1) | 0.10 | (-) |
| बड़ी (10 है. व अधिक) | –0.62 | (-1.5) | -12.93 | (-8.1) |
| योग | 18.34 | | 0.65 | |

**नोट :** कोष्ठक में संख्या 1970-71 की तुलना में 1980-81 में कुल क्षेत्र संख्या के प्रतिशत का अंतर है ।

अन्य सम्बद्ध कार्यों के लिए एक स्थायी साधन आधार मिलेगा। इसी प्रकार, जोतों की चकबंदी, पट्टेदारी, नियमन, भूमि रिकार्ड को ठीक करने से छोटे और सीमांतक किसानों को नयी तकनीक और साज-सामान प्राप्त करने के अधिक अवसर मिलेंगे जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी।"

इस प्रकार, सातवीं योजना में भूमि सुधारों को ग्रामीण विकास कार्य की मुख्य धारा में ले आया गया है। अब यह ऐसा अलग कार्यक्रम नहीं रहा जिसे राजस्व विभाग ग्रामीण विकास के अन्य कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखकर चलाता रहे।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में भूमि सुधारों को एक केन्द्रीय कार्य माना गया है इसलिए राज्यों में राजस्व विभागों और भूमि सुधारों के प्रभारी मंत्रियों का मई 1985 में अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाकर उसमें अनेक निर्णय लिये गये।

राज्यों से अनुरोध किया गया है कि वे वर्तमान कानून में खामियां दूर करने के उपाय करें, मुकदमें वाले मामलों के जल्दी निपटारे के लिए उच्च-न्यायालयों की विशेष पीठ बनायें या संविधान के अनुच्छेद 323 ख के अधीन ट्रिब्यूनल गठित करें और कानूनों को जोर देकर लागू करें, कानूनों से बचने के रास्ते रोकें और बचने वालों के विरूद्ध उपाय करें, सार्वजनिक निवेश से नवसिंचित क्षेत्रों को समुचित अधिकतम सीमा के अन्तर्गत लायें। राज्यों से यह भी अनुरोध किया गया है कि वे परिवार भूमि की अधिकतम सीमा तय करने की 24.1.1971 से लागू परिभाषा में वयस्क पुत्रों को शामिल करने पर विचार करें, धार्मिक तथा धर्मार्थ संस्थाओं की जमीन को अधिकतम सीमा कानून के अधीन लाने पर विचार करें और भूमि सीमा को और कम करने पर विचार करें ताकि भूमिहीनों में वितरण के लिए अधिक भूमि मिल सके। उनसे यह देखने का भी अनुरोध किया गया है कि जब फालतू जमीन आवंटित की जाये तो इसके स्वामित्व के बारे में परिवर्तन भूमि रिकार्ड में दर्ज किया जाये, भूमि का वास्तविक सीमांकन किया जाये और उसका कब्जा दिया जाये और कानूनी प्रावधान बनाकर लागू किये जायें ताकि ऐसे लोगों को बेदखली से सुरक्षा मिल सके और आबंटित विशेषकर अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को मिली जमीन पर जबरन बैठे लोगों या गैरकानूनी तौर पर कब्जा किये बैठे लोगों को तुरन्त हटाकर जमीन का कब्जा आवंटियों को दिलवाया जाये। अधिकतम सीमा में कमी करके दो फसलों वाली सिंचित भूमि के लिए 5 हैक्टेयर, एक फसल वाली सिंचित जमीन के लिए 7.5 हैक्टेयर और अन्य भूमि के लिए 12 हैक्टेयर का सुझाव दिया गया है।

"निजी जुताई" की नयी व्याख्या करके उसे कड़ा बनाने, सभी पट्टेदारों और बटाईदारों को दर्ज करने, पट्टेदारों को अनुमति देने की अनावश्यक छूट समाप्त करने, पट्टेदारों और बटाईदारों को स्वामित्व के अधिकार देने के फैसले के लिए जनमत जगाना और निचले स्तर से दबाव बनाना आवश्यक है। जहां तक कृषि भूमि अधिकतम सीमा कानूनों का सवाल है, पांच से अधिक सदस्यों वाले परिवारों द्वारा सीमा से दुगुनी अधिक जमीन रखने और चाय, काफी, रबर, इलायची और कोको बागान के लिए छूट देने के प्रावधान शायद संभव न हो सकें पर 24.1.1971 से परिवार की परिभाषा में वयस्क पुत्रों को शामिल करने, सम्बद्ध व्यक्तिगत कानून के अन्तर्गत संयुक्त परिवार के प्रत्येक सहभागी को मामूली बंटवारे के साथ सीमा की अलग यूनिट देने का प्रावधान हटाने, धार्मिक और धर्मार्थ संस्थाओं, सार्वजनिक ट्रस्टों और संस्थाओं द्वारा सामान्य सीमा से अधिक जमीन रखने की छूट समाप्त करने, प्रस्तावित स्तर तक सीमा करने के लिए काफी दबाव तथा राजनीतिक कार्यवाही करने की आवश्यकता है। लेकिन जोरदार परिपालन के लिए प्रशासनिक तथा कानूनी उपाय संभव होने चाहिये ताकि अदालतों में पड़े मामलों का जल्दी फैसला हो, बेनामी और फर्जी हस्तांतरण रोका जा सके, छूट का दुरूपयोग और भूमि का गलत वर्गीकरण रुके, सार्वजनिक खर्च से नव-सिंचित भूमि पर समुचित सीमा लगे, फालतू जमीन के आबंटियों को सुरक्षा मिले और भूमि विकास तथा भूमि आधारित अन्य परिसंपत्तियों के विकास में सहायता मिले।

अब तक घोषित फालतू जमीन खेती वाली जमीन के दो प्रतिशत से भी कम है। फालतू जमीन के वितरण तथा पुश्तैनी वितरण के कारण 1970-71 से 1980-81 के बीच छोटी और सीमांतक जोतों की संख्या में वृद्धि हुई है, लेकिन दस हैक्टेयर तथा उससे ऊपर की बड़ी जोतों की संख्या अब भी काफी अधिक है (कुल संख्या का 2.4 प्रतिशत) और इनके अन्तर्गत काफी इलाका है। (कुल क्षेत्र का 22.8 प्रतिशत) अनुलग्नक एक में 1970-71 से 1980-81 के बीच दो हैक्टेयर से कम जोतों और दस हैक्टेयर तथा अधिक की जोतों के राज्यवार प्रतिशत वितरण की स्थिति दी गयी है।

अनुलग्नक दो में दस हैक्टेयर या अधिक की जोतों में औसत कृषिगत जोत क्षेत्र, वर्तमान अधिकतम सीमा की स्थिति तथा फालतू जमीन के अनुमानों की स्थिति दी गयी है जो कि प्रत्येक राज्य में औसत अधिकतम सीमा के कुछ अनुमानों पर आधारित है। बागान और बगीचों को छोड़कर प्रत्येक परिवार के लिए

अगर असिंचित भूमि सीमा घटाकर बारह हैक्टेयर कर दी जाये तो इससे मिल सकने वाली फालतू जमीन का अनुमान भी लगाया गया है । अगर पांच सदस्यों से अधिक के परिवार के लिए "अधिकतम" सीमा सामान्य से डेढ़ या दुगुनी अधिक भी रख दी जाये (लेकिन इसमें परिवार के वयस्क पुत्र शामिल रहें और संयुक्त परिवार के सहभागी को अलग यूनिट सीमा की अनुमति न हो) तो फालतू जमीन का अनुमान कम से कम 30-40 लाख हैक्टेयर बैठेगा(अर्थात अब तक घोषित फालतू जमीन या इससे कुछ अधिक) जिसे भूमिहीनों में बांटा जा सकता है । लेकिन एक अजीब बात यह है कि कुछ राज्यों में उच्चतम श्रेणी में जोतों का औसत आकार बढ़ गया है ।

इस तरह अभी भी काफी कुछ करना बाकी है । अतः हमें भूमि सुधारों को लागू करने के लिए विभिन्न प्रशासनिक तथा अन्य उपायों पर नजर डालनी होगी ।

अगर सीमा से फालतू जमीन का पता लगाने के वास्तविक उपायों का ठीक से विश्लेषण किया जाये तो पता चलेगा कि जमीन मालिकों द्वारा की गयी कानूनी घोषणा की जांच के बाद निम्नलिखित काम करने होते हैं :—
(1) सीमा से अधिक जमीन रखने के संदेह वाले या अधिक रखने वाले परिवारों का पता लगाना (2) अधिकार के रिकार्ड अथवा स्वामित्व दस्तावेज के आधार पर प्रत्येक ऐसे परिवार के प्रभावी और वास्तविक कब्जे वाले प्लाटों का पता लगाना और उनकी पहचान करना और जाली अथवा मिलीभगत समझौते के अधीन छिपे तौर पर अथवा किसी असली या काल्पनिक व्यक्ति के नाम बेनामी जमीन का पता लगाना (3) मिलीभगत हस्तांतरण अथवा बेनामी तरीके से रखी गयी फालतू जमीन और अन्य सभी फालतू जमीन को लेने के लिए अर्ध-न्यायिक प्रक्रिया शुरू करना और इसके लिए पर्याप्त सबूत जुटाना जो कि उच्चतर न्यायिक स्तर पर समीक्षा/अपील के दौरान जांच में पक्के साबित हों (4) अर्ध-न्यायिक तथा अन्य प्रशासनिक प्रक्रियाओं के पूरा होने पर इस जमीन का कब्ज़ा लेना (5) इस फालतू जमीन को कानूनी/प्रशासनिक तौर पर निर्धारित वरीयता के अनुसार भूमिहीनों अथवा गरीब किसानों को देना (6) पुराने मालिकों द्वारा हिंसा के बल पर इन लोगों को इस जमीन से गैर-कानूनी तरीके से हटाने को रोकने के लिए न्यूनतम आत्म-रक्षा तंत्र जुटाना और (7) उपभोग तथा उत्पादन ऋण के लिए कुछ व्यवस्था जिससे नया आबंटी तुरन्त खेती करने लायक बने और पुराने मालिक के ऋण चंगुल में फंसकर जमीन न गंवा बैठे ।

इसी तरह काश्तकारी सुधार के लिए चाहे स्वामित्व अधिकार देने का लक्ष्य हो या कब्जे के पुश्तैनी हक दिलाने का उद्देश्य हो, निम्नलिखित उपाय करने होंगे :—
(1) वास्तविक काश्तकारों का पता लगाना (वास्तविक काश्तकारों को या तो दबाकर बेदखल कर दिया जायेगा या फिर "स्वेच्छा" से सौंपने पर मजबूर किया जायेगा अथवा भूमि मालिक के अपने ही आदमियों को नकली काश्तकार बनाकर रखवा दिया जायेगा (2) काश्तकारी के सबूत जुटाना क्योंकि सभी या अधिकतर काश्तकारी जबानी होगी (3) वास्तविक काश्तकारों में परस्पर समर्थन व्यवस्था जिससे उनमें भूमि मालिकों से कार्यवाही का डर दूर हो, (4) काश्तकारी अधिकार स्थापित करने के लिए कानूनी कार्यवाही शुरु करना और अधिकार रिकार्ड में नाम दर्ज करना (5) अगर कब्जे या स्वामित्व अधिकार को खरीदने की आवश्यकता पड़े तो इसके भुगतान के लिए वित्तीय प्रबंध (6) उपभोग और उत्पादन ऋण की तत्काल आवश्यकता पूरी करना क्योंकि भूमि मालिक उधार वापस ले लेगा (7) हिंसक और गैरकानूनी तरीके से जमीन से खदेड़ने को रोकने के लिए समर्थन व्यवस्था और (8) खेत पर ही रहने वाले खेतिहर को खदेड़ने से रोकने के लिए कानूनी और शारीरिक सहायता क्योंकि अनेक क्षेत्रों में अधिकतर काश्तकार मालिक के खेत पर दिखावटी मालिक की तरह रखे जाते हैं ।

इस प्रकार "फालतू जमीन के लिए सीमा और काश्तकारी की सुरक्षा के परिपालन के लिए कार्य योजना से स्पष्ट है कि ग्राम सेवकों के संगठनों की सहायता के बिना बढ़िया से बढ़िया अफसरशाही भी खास सफलता प्राप्त नहीं कर सकती ।" कार्य योजना की दोनों बातों के बारे में अच्छा प्रमाण बटाईदारों, काश्तकारों और खेत मजदूरों से मिल सकता है जो कि भूमि मालिक के खेत पर काम करते हैं । यही लोग प्रभावी कब्जे, भूमि का कानूनी लाभ उठाने, फसल की किस्म के बारे में सिद्ध करके काश्तकार और काश्तकारी की पहचान करा सकते हैं । ये लोग वह आधार हैं जिससे सीमा से फालतू जमीन और वास्तविक काश्तकारी का पता लग सकता है । लेकिन किसी बटाईदार और खेत-मजदूर की हिम्मत नहीं होती कि वह अलग-अलग या स्वयं ही आगे आकर जानकारी दे क्योंकि उसे तुरन्त और भयंकर खतरे की आशंका होती है । यह तो जब गरीब ग्रामीण यह जानकारी संयुक्त रुप से देने को तैयार होते हैं तभी अफसर प्रभावशाली ढंग से कार्यवाही कर सकते हैं । इस संगठनात्मक

समर्थन के बिना, अफसर भले ही भूमि मालिकों की तरफ झुके हुए न हों, परन्तु भूमि मालिकों के ही प्रमाणों पर निर्भर होने को मजबूर होते हैं और जाहिर है कि अधिकांश निर्णय भी उनके ही हक में होते हैं । जहां अफसर गरीब ग्रामीणों के संगठनों का सहयोग नहीं लेते या उन्हें दूर रखते हैं वहां परिणाम खराब हो सकते हैं । लेकिन कठिनाइयों के बावजूद जहां कहीं भी अफसरों ने गरीब ग्रामीणों का सहयोग मांगा और लिया वहां परिणाम उत्साहजनक रहे हैं । पश्चिम बंगाल में 1967-70 में और फिर 1978 से सीमा से अधिक जमीन सौंपने और बटाईदारों को स्थायी कब्जे और पैतृक हस्तांतरण अधिकार देने के लिए उनका पंजीकरण करने के लिए सरकार ने जो कि गरीबों के पक्ष में थी, ग्रामीण मजदूरों के संगठनों और गरीब ग्रामीणों के अनौपचारिक ग्रुपों का सहयोग लिया ताकि सीमा से अधिक फालतू जमीन और बटाईदारों का पता लगाया जा सके । फलस्वरूप भारत में कुल सौंपी गयी जमीन का करीब 27 प्रतिशत पश्चिम बंगाल से मिला और करीब 60-70 प्रतिशत अनौपचारिक बटाईदार अधिकार रिकार्ड में दर्ज किये गये हैं जिन्हें खेती के पैतृक काश्तकारी अधिकार और उचित काश्त मजदूरी मिल रही है । इसी तरह केरल में छठे दशक के अन्त में ग्रामीण मजदूर संगठनों की मदद से झोपड़-पट्टी वाले लोगों को जमीन के अधिकार और पट्टा दिलाने का एक विशाल कार्यक्रम चलाया गया । इसका परिणाम भी अच्छा रहा ।

"लेकिन, गरीब ग्रामीणों के हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने के लिए उनके संगठन कितने ही वांछित और आवश्यक हों पर तथ्य यह है कि अधिकतर राज्यों में ये कमजोर और अविकसित हैं ।" इनका विस्तार और विकास ढीला और अस्थिर रहा है । वर्ष 1974 की एक रिपोर्ट के अनुसार तमाम गरीब किसानों और ग्रामीण मजदूरों के संगठनों की सदस्य संख्या गरीब किसानों और खेत मजदूरों की कुल संख्या के पांच प्रतिशत से अधिक नहीं थी । इस समय स्थिति शायद कुछ बदली हो लेकिन बीच के वर्षों में आधारभूत परिवर्तन हो गया हो, ऐसी उम्मीद नहीं है । सब जानते हैं कि भारत में देश के कुछ भागों में ऐसे संगठन शक्तिशाली हैं जबकि काफी बड़े क्षेत्र में इन संगठनों का नामोनिशान भी नहीं है । यह भी सर्वविदित है कि कुछ क्षेत्रों में ग्रामीणों के इन संगठनों को बड़े संदेह की नजर से देखा जाता है और इन्हें विद्रोही आंदोलन का सहयोगी माना जाता है । ऐसे वातावरण में इस तरह का संगठन बनाना और चलाना बड़ा कठिन है ।

**'इस प्रकार फालतू जमीन के लिए सीमा और काश्तकारी की सुरक्षा के परिपालन के लिए कार्य योजना से स्पष्ट है कि ग्राम सेवकों के संगठनों की सहायता के बिना बढ़िया से बढ़िया अफसरशाही भी खास सफलता प्राप्त नहीं कर सकती ।'**

ग्रामीण मजदूरों के हितों की देखभाल, प्रोत्साहन और उनके संरक्षण के लिए वास्तविक संगठन बनाना और विकसित करना स्वयं में काफी कठिन काम है ।

इन संगठनों का किसी खास स्तर तक विकसित न हो पाना इस बात का संकेत है कि इनके विकास और विस्तार में कई रुकावटें हैं जिनमें से कुछ भीतरी हैं और कुछ बाहरी । बाहरी रुकावटें हैं संपत्ति मालिकों की जबरदस्त शक्ति, गरीबों की आर्थिक निर्भरता, व्यवस्था और कानून के संरक्षकों का पक्षपातपूर्ण रवैया और इनका स्थिति को यथावत बनाये रखने का पूर्वाग्रह, सहायक कानून का अभाव और मौजूदा कानूनों का परिपालन न करना । बाकी कारण गरीबी की एक समान दशा और मजबूरी से उत्पन्न होते हैं । विपरीत आर्थिक हितों, जाति और वर्गभेद, लिंगभेद और अन्य भेदभावों के कारण गरीब बंट जाते हैं और ये लोग उपलब्ध सीमित साधनों तथा अवसरों के लिए आपस में मुकाबले के लिए मजबूर हो जाते हैं । गरीब ग्रामीणों की विशाल जनसंख्या किसी तरह घिसट कर गुजर-बसर करती है और उनकी यह दयनीय स्थिति उन्हें संपन्न वर्ग के शोषण का

**'लेकिन गरीब ग्रामीणों के हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने के लिए उनके संगठन कितने ही वांछित और आवश्यक हों पर तथ्य यह है कि अधिकतर राज्यों में ये कमजोर और अविकसित हैं । इनका विस्तार और विकास ढीला और अस्थिर रहा है ।'**

आसानी से शिकार बना डालती है। गरीब को गरीब से लड़ाने के लिए बड़ी चालाकी से और जानबूझकर उनमें फूट के बीज डाल दिये जाते हैं। फटेहाली का इतनी कुटिलता से फायदा उठाया जाता है कि गरीब अपने ही शोषक की तरफ सहायता और बचाव के लिए ताकने को मजबूर हो जाता है और वह एक होकर संगठन की ताकत के जरिये अपनी हालत सुधारने की सोच ही नहीं पता।

पर्याप्त कानूनी समर्थन का अभाव संगठित होने के प्रयासों को धूमिल कर डालता है।

जिन देशों में मजदूर संघ काफी पहले बन गये थे उनमें भी मजदूर संघ कानूनों को बदलकर ग्रामीण मजदूरों को उनके अन्तर्गत लाने की कोशिश नहीं की गयी है। मजदूरों के अधिकारों संबंधी राष्ट्रीय कानून भी खुद रोजगार ढूंढ कर रोजी कमाने वाले ग्रामीण मजदूरों, बटाईदारों, पट्टेदारों और सीमांतक किसानों के इन अधिकारों के बारे में मौन हैं। कुछ मामलों में मजदूर कानून के अध्ययन से पता चलता है कि यह केवल वेतन पाने वालों तक ही सीमित है इसलिए जब तक (जो कि कम होता है) खुद काम ढूंढकर रोजी कमाने वाले ग्रामीण मजदूरों के मजदूर संघ बनाने के अधिकार के लिए अलग कानून नहीं बनता तब तक ये मजदूर संगठन से बाहर रहेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कन्वेंशन (4) ने ग्रामीण मजदूरों की परिभाषा की तथा इस श्रेणी को इसमें शामिल किया ताकि राष्ट्रीय कानून में संशोधन किये जा सकें। कानूनी सुरक्षा के अभाव में संयोजकों और सदस्यों को दीवानी कार्यवाही और अपराधपूर्ण षड्यंत्र का खतरा बना रहता है। कानूनी तौर पर देय से अधिक उत्पादन को सौंपने से रोकना, भूमि मालिकों द्वारा गैर-कानूनी तरीके से रोकने पर भी जमीन जोतना अथवा सौंपी गयी जमीन पर कब्जा करने को अक्सर शान्ति भंग करने की कार्यवाही माना जाता है और इनके लिए सामान्य फौजदारी कानूनों के अन्तर्गत कार्यवाही की जाती है।

अफसरशाही का बर्ताव राजनीतिक सरकार के दृष्टिकोण से अलग होता है और इन संगठनों के विकास पर इनका गंभीर असर पड़ता है। भारत को औपनिवेशिक ब्रिटिश शासन से एक बड़ी मजबूत और विकसित अफ़सरशाही विरासत में मिली है। हमने स्वतंत्र होने के बाद भी प्रशासन के मूल ढांचे को बनाये रखा है। पुरानी परम्परा बनाये रखने के लिए अफसरशाही ने कानून हो या न हो, व्यवस्था बनाये रखने की परम्परा डाली। यह परम्परा जारी है। हालांकि बीच में इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। सब जानते हैं कि अफसरशाही का काफी बड़ा वर्ग ग्रामीण संभ्रांत वर्ग से सीधे जुड़ा हुआ है। इस कारण वह उसके बारे में पक्षपातपूर्ण रहता है। हालांकि यह वांछित नहीं है। अफसरशाही का यह वर्ग जोरदार भूमि सुधार के रास्ते में एक अतिरिक्त रोड़ा बनता है। लेकिन अफसरशाही का जो वर्ग शहर के मध्यम वर्ग से है और जिसका गांव से कोई संबंध नहीं है वह भी इसी तरह का व्यवहार करता है। अफसरशाही तो राज्य में व्याप्त आचार-व्यवहार का आचरण करती है। बाजार की अर्थव्यवस्था में संपन्न वर्ग राज्यतंत्र पर कब्जा जमाये हुए था इसलिए यह स्वाभाविक था कि मूल कानून, प्रशासनिक और न्यायिक परम्परायें मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के सर्वथा अनुकूल हों। ऐसी स्थिति में अफसरशाही ऐसे किसी भी आंदोलन या समन्वित कार्यवाही के खिलाफ अथवा ऐसे किसी भी कानून के खिलाफ दृष्टिकोण अपनायेगी जो मौजूदा सामाजिक प्रबन्धों में परिवर्तन लाना चाहते हैं। मौजूदा प्रणाली में बदलाव लाने वाली किसी भी संगठनात्मक कोशिश को स्थापित व्यवस्था के लिए खतरा मान लिया जाता है और स्वतः ही जवाबी कार्यवाही शुरु कर दी जाती है। इसके अलावा एक मजबूत अफसरशाही अपनी दृष्टि वाले सार्वजनिक हित का अपने आपको संरक्षक मानने लगती है इसलिए यह गरीब ग्रामीणों के संगठनों से घृणा करती है, इनका विरोध करती है और इन्हें इन कार्यों के कानून सम्मत पालन में बाधक मानती है।

वर्गभेद के कारण उत्पन्न गरीब विरोधी दृष्टिकोण से निपटना तो कठिन काम होगा लेकिन जब यह दृष्टिकोण एक लम्बी प्रशासनिक परम्परा के कारण बनता है तो कुछ हद तक इसका निदान हो सकता है बशर्ते कि ऊपर से इस बारे में एक नयी नीति के लिए दबाव पड़े। पश्चिम बंगाल में "बारगा अभियान" के दौरान यही स्थिति सामने आयी और राज्य सरकार ने विशेष शिविर लगाये जहां 30 से 40 कृषि मजदूरों, बटाईदारों, भूमि सुधार और अन्य विभागों के डेढ़ दर्जन अफसरों को इकट्ठे रखा गया, इन्हें साथ भोजन कराया गया और दूर-दराज के ग्रामीण अंचल में एक ही जगह इकट्ठे बैठकर विचार-विमर्श कराया गया। इन शिविरों का मुख्य उद्देश्य यह था कि ये गरीब लोग अपनी गरीबी की समस्या के बारे में सोचें और इसके कारण तथा इसके निदान के बारे में अपने सुझाव दें। अफसरों से कहा गया कि वे प्रेक्षक और लिखने वाले की भूमिका निभायें क्योंकि शिविरों में आये अधिकतर गैर-सरकारी लोग अनपढ़ थे। इन शिविरों का अधिकारियों पर बड़ा उपयोगी और प्रबल असर पड़ा। "इनकी बेपरवाही, अड़ियल दृष्टिकोण, मनमानी छूटने लगी और वे अपने आपको परिवर्तन का माध्यम मानने लगे।" अफसरशाही को गरीब ग्रामीणों के सामने

लाकर उसका दृष्टिकोण बदलने के सरकारी प्रयास का यह एक अद्भुत उदाहरण है ।

कमरतोड़ महंगाई ही अपने आप में संगठन के विकास में बाधक है । गरीबी के कारण पराधीनता से आदमी भाग्यवादी बनता है और गरीब स्वयं तो सोचता ही है उसे यह सोचने के लिए मजबूर भी कर दिया जाता है कि हर आदमी बराबर नहीं पैदा हुआ है और गरीबी से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं है । इसलिए जिस हालत में है उसे स्वीकार कर लो और मालिक जो दे दे उससे समय काट लो । स्थिति को बदलने के लिए किसी संगठन या संस्था का सहारा लेने और कष्ट तथा अनिश्चितता का जोखिम उठाने की बजाय बंधुआ मजदूरी में काल्पनिक सुरक्षा को बेहतर समझने लगते हैं । संगठन खड़ा करने के लिए न तो उनके पास कोई वित्तीय सहायता होती है और न ही भूमि मालिकों के आर्थिक दबाव को सह पाने की ताकत होती है । और पाउलो फ्रेइरे के शब्दों में वे '' विहीनों के मौन की संस्कृति '' में डूब कर रह जाते हैं ।

सकता है । महत्वपूर्ण मुद्दे पर आपसी सहमति लायी जा सकती है ।

अन्य विचारणीय बात यह है कि ग्रामीण मजदूरों की विशेष कमजोर स्थिति के कारण बाहरी एजेंसी की भूमिका का महत्व बढ़ जाता है । धन की कमी, संगठनात्मक कुशलता का अभाव, टिक पाने की अक्षमता, काडर का अभाव–ये सब बातें बताती हैं कि गरीब ग्रामीणों को अपना संगठन बनाने में और उसे आगे बढ़ाने में बाहरी सहायता बड़ी महत्वपूर्ण है । यह सहायता उपलब्ध करायी जायेगी या नहीं और अगर मिलेगी तो उन्हें निर्भर बनाये बिना सही, अर्थपूर्ण भूमिका निभा पायेगी या नहीं इस बारे में सामान्य रुप से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता । प्रत्येक स्थिति अपने अनुसार होगी ।

भारत सरकार ने इस आवश्यकता को समझा है कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम से लाभान्वित होने वाले लोग संगठित हों ताकि वे इन कार्यक्रमों का अधिकतम लाभ उठा सकें । यह महसूस किया गया कि इन लोगों को लाभ निश्चित रुप से मिले इसके लिए इनकी सक्रिय भागीदारी आवश्यक है । इसलिए सरकार ने हाल में एक कार्यक्रम शुरु किया जिसका नाम है ''गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लाभान्वितों का संगठन ।'' इसमें शिविरों के जरिये गरीब ग्रामीणों में जागरूकता और दिलचस्पी बढ़ाने का लक्ष्य है । ये शिविर स्वयंसेवी संगठनों, नेहरू युवक केन्द्र और राष्ट्रीय सेवा कैम्प की सहायता से लगाये जायेंगे । यह कार्यक्रम भूमि सुधारों से लाभान्वित होने वालों के लिए नया नहीं है । लेकिन इसकी सफलता से गरीबों की स्थिति मजबूत होगी और भूमि सुधार तथा अन्य कार्यक्रम प्रभावी ढंग से लागू हो सकेंगे ।

---

**'कमरतोड़ महंगाई ही अपने आप में संगठन के विकास में बाधक है । गरीबी के कारण पराधीनता से आदमी भाग्यवादी बनता है और गरीब स्वयं तो सोचता ही है उसे यह सोचने के लिए मजबूर भी कर दिया जाता है कि हर आदमी बराबर नहीं पैदा हुआ है और गरीबी से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं है । इसलिए जिस हालत में है उसे स्वाकार कर लो और मालिक जो दे दे उससे समय काट लो ।'**

---

ग्रामीण मजदूर समांग वर्ग नहीं है—इनमें विभिन्न वर्ग हैं जैसे सीमांतक किसान, पट्टेदार किसान, बटाईदार, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, खेत के बाहर मजदूर और अन्य मजदूर जिनके हित अलग-अलग हैं और अक्सर एक दूसरे से मेल नहीं खाते । इसलिए समस्या यह है कि सबके लिए एक ही संगठन हो या हर उप-वर्ग के लिए अलग-अलग संगठन हो । यह समस्या ग्रामीण मजदूरों को स्वयं ही सुलझानी होगी । लेकिन यह कहना होगा कि अनेक संगठनों के होने से उनकी अपनी बात मनवाने की ताकत घटेगी और हो सकता है कि कोई संगठन ताकत की स्थिति में न आने पाये ।

वर्गों की मतभिन्नता एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं होगी इसलिए आपसी वार्ता से सहभागिता वाले संगठन में इन्हें दूर किया जा

## अनुलग्नक I कृषि गणना—खेती वाली जोतों का विवरण

| राज्य | 2 है. से कम खेती जोतों और खेती के क्षेत्र का कुल का प्रतिशत | | | | | | 10 है. से अधिक की जोतों और खेती के क्षेत्र का कुल प्रतिशत | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1970-71 | | 1976-77 | | 1980-81 | | 1970-71 | | 1976-77 | | 1980-81 | |
| | संख्या | क्षेत्र | संख्या | क्षेत्र | संख्या | क्षेत्र | संख्या | क्षेत्र | संख्या | क्षेत्र | संख्या | क्षेत्र |
| आंध्र प्रदेश | 65.5 | 19.3 | 66.9 | 22.1 | 72.7 | 29.3 | 4.3 | 30.7 | 3.4 | 24.8 | 2.1 | 18.8 |
| असम | 80.8 | 40.6 | 82.2 | 42.6 | 82.2 | 42.7 | 0.4 | 15.1 | 0.3 | 14.0 | 0.2 | 14.2 |
| बिहार | 79.0 | 29.7 | 84.6 | 37.7 | 86.7 | 41.6 | 1.8 | 20.6 | 0.8 | 13.2 | 0.6 | 10.5 |
| गुजरात | 42.9 | 9.8 | 44.1 | 11.1 | 45.9 | 12.9 | 9.6 | 36.5 | 7.2 | 29.1 | 5.9 | 24.8 |
| हरियाणा | 46.3 | 10.7 | 49.5 | 11.4 | 51.4 | 13.4 | 8.1 | 34.2 | 7.2 | 33.6 | 6.4 | 31.3 |
| हिमाचल प्रदेश | 78.5 | 33.5 | 76.7 | 33.6 | 77.2 | 35.3 | 1.1 | 17.1 | 1.2 | 12.8 | 1.1 | 12.7 |
| जम्मू और कश्मीर | 88.6 | 56.7 | 86.7 | 52.0 | 87.2 | 53.6 | 0.1 | 2.5 | 0.2 | 6.6 | 0.2 | 4.3 |
| कर्नाटक | 54.1 | 15.6 | 56.7 | 17.2 | 59.0 | 19.4 | 6.2 | 31.7 | 5.2 | 28.7 | 4.3 | 24.5 |
| केरल | 93.2 | 56.7 | 95.7 | 62.3 | 96.1 | 63.6 | 0.2 | 12.6 | 0.1 | 8.9 | 0.1 | 7.2 |
| 0 मध्य प्रदेश | 48.6 | 9.6 | 50.7 | 11.4 | 51.9 | 12.4 | 9.3 | 41.2 | 7.5 | 35.9 | 6.8 | 34.0 |
| 1 महाराष्ट्र | 42.8 | 8.8 | 45.9 | 11.2 | 52.0 | 15.8 | 10.4 | 40.0 | 7.4 | 31.1 | 4.4 | 21.6 |
| 2 मणीपुर | 83.8 | 62.9 | 84.4 | 62.6 | 82.8 | 59.4 | 0.03 | 0.4 | Neg | 0.3 | Neg | 0.2 |
| 3 उड़ीसा | 76.2 | 38.5 | 75.7 | 40.3 | 73.6 | 37.9 | 1.4 | 12.5 | 1.0 | 9.2 | 0.9 | 7.4 |
| 4 पंजाब | 56.5 | 15.0 | 60.6 | 15.9 | 38.6 | 10.2 | 5.0 | 26.9 | 4.1 | 26.2 | 7.2 | 29.2 |
| 5 राजस्थान | 43.8 | 7.2 | 48.5 | 8.5 | 49.0 | 9.6 | 14.0 | 57.1 | 11.6 | 52.2 | 10.9 | 49.6 |
| 6 सिक्किम | — | — | 59.5 | 21.0 | 68.7 | 28.2 | — | — | 2.9 | 20.9 | 1.6 | 13.1 |
| 7 तमिलनाडु | 79.7 | 37.6 | 83.0 | 41.9 | 86.0 | 47.1 | 1.1 | 13.0 | 0.8 | 10.4 | 0.5 | 8.7 |
| 8 त्रिपुरा | 88.3 | 53.7 | 83.2 | 49.2 | 88.6 | 59.1 | 0.2 | 8.7 | 0.2 | 8.2 | 0.1 | 6.4 |
| 9 उत्तर प्रदेश | 84.0 | 41.9 | 85.8 | 45.4 | 86.9 | 48.3 | 0.7 | 9.9 | 0.5 | 7.4 | 0.4 | 6.2 |
| 10 पश्चिम बंगाल | 82.3 | 47.2 | 87.1 | 55.6 | 89.3 | 60.4 | 0.08 | 4.6 | 0.04 | 4.0 | 0.02 | 3.7 |
| **योग** | **69.6** | **20.9** | **72.7** | **23.5** | **74.5** | **26.3** | **3.9** | **30.9** | **3.0** | **26.2** | **2.4** | **22.8** |

नोट : 1. हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मणीपुर, उड़ीसा और पंजाब के अतिरिक्त 1970-71 और 1980-81 की अवधि में सभी राज्यों में सीमान्त (1 है. से कम) और लघु (1 से 2 है.) जोतों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है।

2. जम्मू और कश्मीर और पंजाब राज्यों में बड़ी जोतों (10 है. और अधिक) के प्रतिशत में वृद्धि हुई है।

3. उपरोक्त सूचना उन राज्यों की दी गई है जहां भूमि की अधिकतम सीमा का नियमन हुआ है।

4. विभिन्न आकार वर्गों में वर्तमान भूमि जोतों के औसत आकार में परिवर्तन के सम्बन्ध में 1970-71 और 1980-81 के बीच (सिक्किम के लिए) 1976-77 और 1980-81 के बीच की स्थिति का विवरण इस प्रकार है।

| आकार वर्ग | स्थिर | मामूली वृद्धि (10 प्रतिशत से कम) | बड़ी वृद्धि (10 प्रतिशत से अधिक) | मामूली वृद्धि (10 प्रतिशत से कम) | बड़ी वृद्धि (10 प्रतिशत से अधिक) |
|---|---|---|---|---|---|
| मामूली (1 है. से कम) | उत्तर प्रदेश | असम, बिहार, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल | केरल | आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, **हरियाणा, हिमाचल प्रदेश**, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर | पंजाब, त्रिपुरा |
| छोटी (1-2 है.) | गुजरात, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश | बिहार, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, सिक्किम तमिलनाडु | उड़ीसा | आन्ध्र प्रदेश, असम, कर्नाटक, केरल, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल | हरियाणा, मणिपुर |
| अर्ध-मध्यम (2-4 है.) | कर्नाटक | आन्ध्र प्रदेश असम, बिहार, गुजरात, **हिमाचल प्रदेश**, महाराष्ट्र, जम्मू और कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश | उड़ीसा | हरियाणा, मणिपुर, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल | |
| मध्यम (4-10 है.) | जम्मू और कश्मीर | आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, **केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र,** उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश | | हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल | मणिपुर |
| बड़ी (10 है. से अधिक) | जम्मू और कश्मीर | आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात **कर्नाटक, मध्यप्रदेश** पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश | हिमाचल प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, सिक्किम | हरियाणा, तमिलनाडु | असम, जम्मू और कश्मीर, मणिपुर, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल |

अनुलग्नक II : वर्तमान सीमा, 10 हैक्टेयर व अधिक बड़ी जोतों की सघनता फालतू भूमि का अनुमान, वास्तविक घोषित फालतू जमीन और 1980-81 को जोत ढांचे पर फालतू का अनुमान तथा वर्तमान सीमा व 12 हैक्टेयर की सीमा

| राज्य | वर्तमान सीमा (है.) | | 10 है. व अधिक की बड़ी जोतों में कृषि जोत क्षेत्र (है.) का औसत | | | हजार हैक्टेयर: अनुमानित फालतू | | हजार हैक्टेयर: घोषित फालतू | | | 1980-81 जोत आंकड़ों पर अनुमानित फालतू | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | सिंचित | असिंचित | 1970-71 | 1976-77 | 1980-81 | 1970-71 | 1976-77 | संशोधन-पूर्व कानून | संशोधित कानून | योग | वर्तमान सीमा पर | 12 है. की सीमा पर |
| (1) | (2) | (3) | (4) | (5) | (6) | (7) | (8) | (9) | (10) | (11) | (12) | (13) |
| (1) आंध्रप्रदेश | 4.05-10.93 | 14.16-21.85 | 17.87 | 17.06 | 16.49 | 1149 | 620 | 10 | 410 | 420 | 357 | 707 |
| (2) असम | 6.74 | 6.74 | 57.31 | 55.28 | 77.60 | 383 | 380 | 46 | 237 | 283 | 197 | 197 |
| (3) बिहार | 6.07-10.12 | 12.14-18.21 | 17.47 | 17.62 | 17.11 | 720 | 457 | 4 | 123 | 127 | 320 | 330 |
| (4) गुजरात | 4.05-10.93 | 8.09-21.85 | 15.56 | 15.09 | 14.60 | 611 | 414 | 19 | 74 | 93 | 234 | 397 |
| (5) हरियाणा | 7.25-10.9 | 21.8 | 15.87 | 16.64 | 17.20 | 101 | 154 | 51 | 13 | 64 | 126 | 289 |
| (6) हिमाचल प्रदेश | 4.05-6.07 | 12.14-28.33 | 23.67 | 20.71 | 18.06 | 51 | 35 | – | 115 | 115 | 11 | 40 |
| (7) जम्मू और कश्मीर | 3.61-5.06 | 5.95-9.20 | 19.17 | 27.40 | 24.67 | 15 | 15 | 182 | 3 | 185 | 25 | 25 |
| (8) कर्नाटक | 4.05-12.14 | 21.85 | 16.43 | 16.35 | 15.69 | 703 | 677 | – | 121 | 121 | 387 | 562 |
| (9) केरल | 4.86-6.07 | 4.86-6.07 | 47.04 | 37.22 | 35.14 | 180 | 133 | – | 49 | 49 | – | – |
| (10) मध्य प्रदेश | 7.28-10.93 | 21.85 | 17.74 | 17.09 | 17.15 | 1558 | 1148 | 30 | 92 | 122 | 804 | 1922 |
| (11) महाराष्ट्र | 7.28-14.57 | 21.85 | 16.47 | 15.40 | 14.56 | 979 | 353 | 126 | 158 | 284 | – | 640 |
| (12) मणीपुर | 5 | 6 | 17.18 | – | – | – | – | – | Neg | Neg | – | – |
| (13) उड़ीसा | 4.05-6.07 | 12.14-18.21 | 16.37 | 14.64 | 13.78 | 260 | 123 | – | 67 | 67 | 72 | 50 |
| (14) पंजाब | 7-11 | 20.5 | 15.50 | 17.62 | 15.35 | 75 | 198 | 48 | 11 | 59 | 28 | 205 |
| (15) राजस्थान | 7.28-10.93 | 21.85-70.82 | 22.31 | 20.95 | 20.18 | 4031 | 3225 | 141 | 97 | 238 | 2745 | 4004 |
| (16) सिक्किम | 5.06-20.23 | 5.06-20.23 | – | 18.44 | 15.89 | – | 5 | – | – | – | 3 | 4 |
| (17) तमिलनाडु | 4.86 | 24.28 | 16.94 | 17.30 | 17.98 | 644 | 522 | 28 | 38 | 66 | 392 | 165 |
| (18) त्रिपुरा | 4-12 | 4-12 | 35.53 | 41.82 | 50.26 | – | – | – | Neg | Neg | – | – |
| (19) उत्तर प्रदेश | 7.30 | 10.95-18.25 | 16.08 | 15.43 | 15.41 | 371 | 227 | 80 | 123 | 204 | 171 | 226 |
| (20) पश्चिम बंगाल | 5 | 7 | 64.20 | 109.16 | 145.36* | 214 | 198 | 404 | 75 | 479 | 86 | 83 |
| योग | | | 18.10 | 17.58 | 17.24 | 12105 | 8884 | 1170 | 1806 | 2976 | 5958 | 9846 |

**नोट :** 1. कालम 4 से 8 कृषि गणना आंकड़ों पर आधारित हैं। कालम 7 और 8 औसत सीमा के अनुमान पर आधारित हैं।

2. कालम 12 व 13 कृषि गणना आंकड़ों पर आधारित हैं। कालम 12 औसत सीमा के अनुमान पर आधारित है। कालम 8 व 13 बारह है. की सीमा (अथवा इससे कम जहां राज्य में सीमा कम है) पर आधारित है लेकिन दोनों में बागान व बागीचों के लिये क्षेत्र शामिल नहीं है (कुल लगभग 13.2 लाख हैक्टेयर) लेकिन कोई अन्य रियायत शामिल नहीं है।

3. 1970-71 की तुलना में 80-81 में 10 है. व अधिक की बड़ी जोतों (इन जोतों में यह औसत जोत क्षेत्र है) की सघनता असम, हरियाणा, जम्मू कश्मीर, तमिलनाडु, त्रिपुरा व पश्चिम बंगाल में बढ़ गयी है।

* संख्या में बागान जोतें शामिल हैं। औसत आकार में वृद्धि कंपनी बागान जोतों को मिलाने या शामिल कर देने से हुई है।

योजना आयोग द्वारा कृषि संबंधों के बारे में स्थापित कार्य दल ने सातवें दशक के आरम्भ में भूमि सुधार कानूनों की विफलता की समीक्षा करते हुए कहा था, "दृढ़ तथा स्पष्ट राजनैतिक इच्छा शक्ति से बाकी सभी कमियां तथा कठिनाईयां दूर की जा सकती थीं लेकिन इस इच्छा शक्ति के अभाव में मामूली कठिनाईयां भी भूमि सुधारों के रास्ते में विशाल रूकावट बन गयीं।" यह बात 1973 में कही गयी थी, 1986 में भी यह बात काफी हद तक सही साबित हो रही है। □

**अनुवाद : ओम प्रकाश दत्ता**
**96, भारत नगर,**
**दिल्ली-110052**

हमारी मूल समस्या जमीन की समस्या है। पूरे एशिया में यह समस्या व्याप्त है। भारत में पुरानी ओर अनुचित भूमि व्यवस्था को पूरी तरह बदलने में हमने काफी काम किया है। हम बड़ी-बड़ी जमीनवाली जायदाद को खत्म करके जमीन किसान को दे रहे हैं और पुराने मालिक को मुआवजा दे रहे हैं।

******

मैं न तो जमींदार हूं और न ही काश्तकार। मैं तो बाहर का हूं। लेकिन पूरी जिंदगी मैं अपने प्रांत में किसान आन्दोलन से करीब से जुड़ा रहा हूं। मेरा इससे भावनात्मक लगाव रहा है, इसके बारे में मेरी जानकारी बौद्धिक ही नहीं, उससे कहीं अधिक है...एशिया में बुनियादी समस्या जमीन की समस्या है। इस समस्या को कई तरह से दूर किया जा सकता है। इसमें देरी करने से हर दिन नयी कठिनाइयां, नये खतरे पैदा हो जाते हैं।

******

गांधीजी शायद आधुनिक भाषा में स्पष्ट न कर पाये हों लेकिन उनका सारा दर्शन मात्र सामाजिक न्याय का नहीं बल्कि समाज सुधार और भूमि सुधार का था।

******

**जवाहर लाल नेहरू**

# भूमि सुधार : उद्देश्य, क्रियान्वयन और प्रभाव

—डा. पी.आर. दुभाषी

**भूमि की अधिकतम सीमा, भूमि सुधार कानून का अभिन्न अंग बनी रही । जैसा कि छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों के आंकड़ों से पता चलता है कि जोतों के स्वामित्व और उनकी खेती में असमानता थी और अधिकतम सीमा निर्धारित किये जाने तथा अतिरिक्त भूमि का वितरण किये जाने से इसमें अधिक समानता हो सकती थी । इस प्रकार भूमि सुधारों का उद्देश्य, सहकारी या सामूहिक आधार पर खेती के आधार पर या ऐसा न होने पर भी, भूमिहीनों या छोटे काश्तकारों के पक्ष में भूमि का पुनर्वितरण करना था ।**

भारतीय अर्थशास्त्र से संबंधित पुस्तकों में हमेशा भूमि सुधारों के महत्व को स्वीकार किया गया है । नानावती और अंजारिया, तथा बाडिया और मर्चेन्ट जैसे लेखकों की मानक पुस्तकों में भूमि सुधारों के बारे में विशेष अध्याय दिये गये हैं । आर.सी.दत्त की पुस्तक "इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया"[3] में ब्रिटिश शासकों द्वारा चलाई गई भूमि पट्टेदारी प्रणाली पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भूमि पट्टेदारी प्रणाली का रूप अलग-अलग था । बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश सहित पूर्वी भारत और देश की रियासतों के अन्य भागों में जमींदारी प्रथा प्रचलित थी । इन क्षेत्रों में सरकार का काश्तकार के साथ सीधा संबंध नहीं था । भूमि के अधिकारों से संबंधित रिकार्ड का रख-रखाव सुव्यवस्थित नहीं था । जमींदार सरकार को एक निश्चित रकम लगान के रूप में देता था लेकिन उसे भूमि को जोतने वाले वास्तविक काश्तकार से कितना भी धन लेने की छूट थी । कई वर्षों के अन्तराल में जमींदार और वास्तविक काश्तकार के बीच कई बिचौलिये पैदा हो गये । इन बिचौलियों का उद्देश्य अधिक लगान पर दूसरे बिचौलिये को जमीन देना था । परिणाम यह हुआ कि वास्तविक काश्तकार को बहुत अधिक बोझ सहना पड़ता था । यह प्रणाली लूट-खसोट और शोषण करने की प्रणाली बन गई और इसमें वास्तविक काश्तकार को बहुत ही कम लाभ होता था । इससे कृषि की उत्पादकता कम होने लगी । काश्तकार, जो कि बटाईदार होता था, इतना गरीब होता था कि बढ़िया बीज-खाद या भूमि सुधार के लिए समुचित साधन जुटाना उसके वश की बात नहीं थी । जमींदारों और बिचौलियों द्वारा जरूरत से ज्यादा शोषण किये जाने के कारण उसको बढ़िया फसल या भूमि सुधार में दिलचस्पी भी नहीं रहती थी ।

मद्रास और बम्बई जैसे इलाकों में, जहां रैयतवाड़ी प्रथा प्रचलित थी, स्थिति कुछ बेहतर थी । यहां सरकार का मौजूदा मालिक के साथ सीधे संबंध होता था जो भूमि के सर्वेक्षण और पुनर्वास के आधार पर भूमि लगान देता था । इसका परिणाम यह था कि जमीन के मालिक अपनी जमीन पर खेती में दिलचस्पी लेते थे और सरकार को राजस्व मिलता था । इससे भूमि और कृषि में सुधार को बढ़ावा मिलता था । भूमि में निवेश और कृषि के साज-सामान की खरीद जमींदारी वाले क्षेत्रों की तुलना में अधिक होती थी । पंजाब और उत्तर-पश्चिमी इलाकों में महलवाड़ी प्रथा प्रचलित थी । इसके अन्तर्गत पूरे गांव का लगान तय कर दिया जाता था । पूरे लगान का भुगतान सारे गांव की तरफ से लम्बरदार या प्रमुख किसान करता था । लेकिन जब जमींदारों के बच्चे ब्रिटिश शिक्षा पद्धति में शिक्षा प्राप्त करके रोजगार की तलाश में

शहरों में जाकर बसने लगे तो, इन इलाकों में ऐसे जमींदारों की संख्या बढ़ने लगी जो अपनी जमीन पर स्वयं खेती नहीं करते थे । छठे दशक के शुरू के वर्षों में काश्त की आधी जमीन उन जमींदारों की थी जो स्वयं खेती नहीं करते थे ।

सुधारों से पहले भारतीय कृषि में बड़ी संख्या में गरीब किसान और भूमिहीन मजदूर थे । थोड़े से धनवान किसानों और जमींदार-साहुकारों के पास बहुत बड़े-बड़े इलाके थे । लगभग 20 प्रतिशत इलाका काश्तकारी के अन्तर्गत आता था और इसमें से लगभग एक तिहाई से अधिक जमीन बटाईदारी पर थी । अधिकांश जमीन अनौपचारिक तौर पर बटाई पर दी गई थी । यह ऐसी व्यवस्था थी जिसमें विकास की कोई गुंजाइश नहीं थी । समानता और विकास, दोनों के लिए कृषि के स्वरूप में कुछ परिवर्तन लाना जरुरी था ।

एक दूरगामी कार्यक्रम पेश किया गया जिसे 1937 में कांग्रेस के चुनाव घोषणापत्र में शामिल किया गया । अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरूजी ने "सरकार और काश्तकार के बीच से बिचौलियों को समाप्त करने " का आह्वान किया और कहा कि उसके बाद "सहकारी या सामूहिक कृषि की प्रणाली अपनाई जानी चाहिए". नवम्बर, 1947 में जयपुर में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में लक्ष्यों और आर्थिक कार्यक्रम से सम्बद्ध समिति ने यह सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किया कि खनिज संसाधनों सहित भूमि और उत्पादन के अन्य साधन समाज के होने चाहिये और समाज के हित में उनका इस्तेमाल और उनकी देख-रेख समाज द्वारा ही की जानी चाहिए । इसने सभी बिचौलियों की पट्टेदारी खत्म करने, सभी तरह की पट्टेदारी को समाप्त करने, एक व्यक्ति के लिए भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित किये जाने, सभी निजी

---

**'भूमि सुधारों के बावजूद भूमि के वास्तविक काश्तकार, बटाईदार और अनौपचारिक काश्तकारों को स्वामित्व नहीं मिल सका और इस प्रकार अनेक राज्यों में बटाईदारी और शोषण करने वाली पट्टेदारी प्रथा बड़े पैमाने पर चलती रही लेकिन काश्तकारी कानून को अधिक व्यापक बनाने के प्रयास किये गये । इन सुधारों का लक्ष्य उनकी स्थिति में सुधार लाना भी था ।'**

---

परिवर्तनों के लिये यह मांग आजादी के पूर्व की गई । एन.जी. रंगा की अध्यक्षता में अखिल भारतीय किसान सभा ने 1936 में लखनऊ में अपनी पहली बैठक में अपना अखिल भारतीय किसान घोषणापत्र तैयार किया जिसमें छोटे भूमि मालिकों, काश्तकारों और भूमिहीन मजदूरों की मांगों को उठाया गया । घोषणापत्र की न्यूनतम मांगों में बिना मुआवजे के जमींदारी प्रथा को समाप्त करने, सभी कर्जों को समाप्त करने, किसानों और भूमिहीन मजदूरों के निर्वाह के लिए खेती योग्य बंजर भूमि के पुनर्वितरण का काम सरकार द्वारा अपने हाथ में लिये जाने, रैयतवाड़ी प्रथा वाले सभी इलाकों में 500 रुपये से कम वार्षिक आय वाले परिवारों को छूट देने के प्रावधान के साथ आय के अनुसार आयकर लगाने, काश्तकारों को स्वामित्व अधिकार, कम ब्याज पर ऋण, सस्ती दर पर बीज और खाद उपलब्ध कराने, बिचौलिये व्यापारियों को हटाने के लिए सहकारी बिक्री संस्थान खोलने तथा ग्राम परिषदों को शामलात चराई वाले इलाक वापिस देने की मांगें शामिल थीं । 1936 में कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन में नेहरूजी की पहल पर गांधीजी की स्वीकृति से कृषि सुधारों का

साहुकारों और व्यापारियों को हटाने तथा ऐसी ग्राम ऋण, विपणन, और संसाधन सोसाइटियों का गठन करने की सिफारिश की जो सभी किसानों की अनिवार्य सदस्यता पर आधारित हों । जुलाई, 1949 में कांग्रेस कृषि सुधार समिति (प्राय: इसे कुमारप्पा समिति कहा जाता है) ने यह सिफारिश कि उन अलाभकारी जोतों (बुनियादी आकार से छोटी) को, जो पांच सदस्यों के औसत परिवार को पूरा रोजगार और एक समुचित रहन-सहन मुहैया नहीं करा पाती हैं, संयुक्त सहकारी फार्मों में मिला दिया जाना चाहिए । समिति ने "बुनियादी" और "अनुकूलतम आकार" के बीच "पारिवारिक खेती" (फैमिली फार्मिंग) की सिफारिश की । लाभकारी जोत की तीन गुना के बराबर अनुकूलतम जोत एक व्यक्ति के पास भूमि की अधिकतम सीमा होगी । इससे अतिरिक्त भूमि का इस्तेमाल संयुक्त सहकारी खेती के लिए किये जाने का प्रस्ताव था । गांधीजी के ग्राम समुदाय की कल्पना के अनुसार अन्तत: सारी भूमि संयुक्त सहकारी व्यवस्था के अन्तर्गत आनी थी ।

भूमि सुधारों का लक्ष्य भूमि की पट्टेदारी और काश्तकारी की

प्रणाली में होने वाले शोषण को समाप्त करना या उसे कम करना था। उन्होंने पिछले समय के कृषि ढांचे से पैदा हुए उन सभी कारणों को, चाहे उत्प्रेरक या दूसरे हों, दूर करने का प्रयास किया जो कृषि उत्पादन को बढ़ाने में रुकावट थे। और उन्होंने कृषि प्रणालियों में मौजूद शोषण और सामाजिक अन्याय के सभी तत्वों को भी समाप्त करने का प्रयास किया ताकि गांव में रहने वाले सभी वर्गों के लिए दर्जे और अवसर की समानता सुनिश्चित की जा सके।

भूमि पट्टेदारी की शोषणकारी प्रणाली के कारण तेलंगाना में कम्युनिस्ट नेतृत्व में छापामार शैली में कृषि क्रान्ति हुई जिसमें किसानों ने जमींदारी वाले इलाकों में भूमि पर कब्जा कर लिया और उत्तर प्रदेश में काश्तकारों और जमींदारों में हिंसा की घटनायें हुई। उभरती हुई इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कांग्रेस के 1946 के चुनाव घोषणा पत्र में बिचौलियों की प्रथा को समाप्त करने की मांग की गई। 8 अगस्त, 1947 को उत्तरप्रदेश विधान सभा ने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने का फैसला किया। कई तरीकों से भूमि सुधारों के और अधिक सुस्पष्ट उद्देश्य सामने रखे गये। एक उद्देश्य पट्टेदारी और लगान निश्चित करवाना तथा काश्तकार को दखलकारी के अधिकार दिलाना था। एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बिचौलियों सहित दूरवासी जमींदारी प्रथा को पूरी तरह समाप्त करना था। लेकिन भूमि सुधारों के बावजूद भूमि के वास्तविक काश्तकार, बटाईदार और अनौपचारिक काश्तकारों को स्वामित्व नहीं मिल सका और इस प्रकार अनेक राज्यों में बटाईदारी और शोषण करने वाली पट्टेदारी प्रथा बड़े पैमाने पर चलती रही लेकिन काश्तकारी कानून को अधिक व्यापक बनाने के प्रयास किये गये। इन सुधारों का लक्ष्य उनकी स्थिति में सुधार लाना भी था।

आर्थिक गतिविधियों के सहकारी स्वरुप को अपनाने की दिशा में भी कुछ परिवर्तन किया गया इसने कांग्रेस की कृषि सुधार समिति की इस सिफारिश का अनुमोदन किया, जिसमें यह कहा गया था कि भूमि के मालिकों द्वारा सीधे खेती के लिए तथा गैर मौसमी काश्तकार से खुद खेती करने के लिए, पारिवारिक जोत के तीन गुना के बराबर जोत की अधिकतम सीमा निर्धारित की जानी चाहिये। बाकी सारी भूमि के काश्तकारों को पूरे मालिकाना अधिकार प्राप्त करने की अनुमति दी जानी चाहिए और जमींदारों को कानून द्वारा निर्धारित दर के अनुसार उनकी जमीन का मुआवजा दिया जाना चाहिये। छोटे और मझौले दर्जे के किसानों की सहायता के लिए सहकारी खेती सोसाइटियां बनाने का प्रस्ताव था। खेतिहर मजदूरों की दशा में सुधार लाने के लिए ग्रामीण समाज के बुनियादी पुनर्गठन का प्रावधान किया गया। सहकारी आधार पर ग्राम व्यवस्था का अंतिम लक्ष्य रखा गया था। कांग्रेस दल, मंत्रिमंडल और लोकसभा ने योजना को स्वीकृति देने के एक भाग के रुप में इन सिफारिशों को लागू किया।

सामान्य आर्थिक विकास की दृष्टि से भी भूमि सुधारों के महत्व को स्वीकार किया गया। 5 अगस्त, 1954 को मुख्यमंत्रियों को लिखे अपने पत्र में नेहरू जी ने कहा था—"भूमि सुधारों की नीति का उद्देश्य वास्तविक काश्तकार के बोझ को हटाने के अलावा जमीन से होने वाली आय को किसानों को समान रुप से दिलवाना और इस प्रकार उनकी क्रय शक्ति बनाना है। इस प्रकार घरेलू बाजार का विस्तार होगा और देश की उत्पादक शक्तियों का विकास होगा।"

भूमि सुधारों का एक अन्य पहलू भूमि जोत को अधिक लाभकारी बनाना था। कृषि अर्थशास्त्रियों में "अनुकूलतम जोत" और "लाभकारी जोत" की धारणा पर काफी लम्बे समय तक परिचर्चा होती रही। वास्तव में "लाभकारी" या "अनुकूलतम" जोत की कोई सामान्य परिभाषा

**'तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंतिम रुप में भी यह कहा गया कि योजना आयोग अधिकतम भूमि सीमा और सहकारी फार्मों के गठन के सुधारों सहित कृषि क्षेत्र के पुनर्गठन के त्वरित कार्यक्रम को स्वीकार करने के लिए, राज्यों के नेताओं को मनाने में पूरी तरह असफल रहा है।'**

पहली पंचवर्षीय योजना में भूमि के पुनर्वितरण का उल्लेखनीय प्रस्ताव किया गया और निजी प्रयासों से हटकर कृषि विकास को विकास के कार्यक्रम के एक अभिन्न अंग के रूप में

तैयार नहीं की जा सकी । लेकिन भूमि की अधिकतम सीमा, भूमि सुधार कानून का अभिन्न अंग बनी रही । जैसा कि छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों के आंकड़ों से पता चलता है कि जोतों के स्वामित्व और उनकी खेती में असमानता थी और अधिकतम सीमा निर्धारित किये जाने तथा अतिरिक्त भूमि का वितरण किये जाने से इसमें अधिक समानता हो सकती थी । इस प्रकार भूमि सुधारों का उद्देश्य, सहकारी या सामूहिक आधार पर,खेती के आधार पर या ऐसा न होने पर भी, भूमिहीनों या छोटे काश्तकारों के पक्ष में भूमि का पुनर्वितरण करना था ।

जोत के आकार को बढ़ाने के लिए छितराई हुई जोतों की चकबंदी करना एक और भूमि सुधार था । यद्यपि राष्ट्रीय नीति के अनुरूप अधिकांश राज्यों ने चकबंदी के लिए कानून लागू कर दिया था, लेकिन पंजाब ही ऐसा राज्य था जिसने चकबंदी का काम सफलतापूर्वक पूरा कर दिखाया । दक्षिण के राज्यों और पूर्वी भारत में जहां भूमि पर दबाव बहुत अधिक है, चकबंदी का काम शुरू ही नहीं किया गया ।

भूमि पट्टेदारी प्रणाली की स्थिति देश के अलग-अलग राज्यों में, यहां तक कि एक ही राज्य के विभिन्न मंडलों में भी भिन्न-भिन्न थी । हर राज्य में राज्य सरकार द्वारा ही कानून लागू किया जाना था और भूमि सुधारों को लागू करने का काम भी राज्य प्रशासन तंत्र को सौंपा जाना था ।

लेकिन जहां तक केन्द्रीय सरकार का संबंध है, इसने योजना आयोग और कृषि मंत्रालय की तरफ से जहां भूमि सुधारों के बारे में एक कक्ष का गठन किया था, सामान्य मार्ग-निर्देश उपलब्ध करवाये । हालांकि दूसरी पंचवर्षीय योजना[11] में पट्टेदारी सुधारों और जोत की अधिकतम सीमा संबंधी प्रस्तावों को फिर दोहराया लेकिन योजना निर्माता राज्यों से कानून को किसी निश्चित समय तक लागू करने के लिए कोई पक्का आश्वासन नहीं ले सके । न ही उन्हें राज्य सरकारों के साथ सहकारी फार्मों के गठन के लक्ष्य निर्धारित करने के बारे में समझौता करने में कोई सफलता मिली । तीसरी पंचवर्षीय योजना[12] के अंतिम रुप में भी यह कहा गया कि योजना आयोग अधिकतम भूमि सीमा और सहकारी फार्मों के गठन के सुधारों सहित कृषि क्षेत्र के पुनर्गठन के त्वरित कार्यक्रम को स्वीकार करने के लिए, राज्यों के नेताओं को मनाने में पूरी तरह असफल रहा है । योजना आयोग, विकास और कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए सामुदायिक प्रयास पर आधारित एक रचनात्मक कार्यक्रम के रूप में भूमि सुधारों को राज्य के नेतृत्व की मान्यता दिलाने में असफल रहा ।

इसका परिणाम यह हुआ कि भूमि सुधार संबंधी नीतियों का कार्य क्षेत्र हालांकि उन्हें अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में तैयार किया गया था, सीमित हो गया । मुख्यमंत्रियों के सम्मेलनों के माध्यम से समन्वय लाने का प्रयास किया गया । उदाहरण के तौर पर 1967 में हुये मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में निम्नलिखित क़दम उठाने की सिफारिश की गई–(1) खेती करने वाले काश्तकारों को छेड़ा नहीं जाना चाहिए और (क) जमीन खाली करने के सभी आदेशों को स्थगित करके (ख) फिर से भूमि वापिस लेने के अधिकार को निलम्बित करके और (ग) स्वेच्छा से जमीन छोड़ने के मामलों पर नियंत्रण करके, उनकी पट्टेदारी की पूरी रक्षा की जानी चाहिये; (2) लगान घटाकर उपज का चौथाई या पांचवा हिस्सा कर दिया जाना चाहिये; (3) पट्टेदारी का रिकार्ड तैयार किया जाना चाहिये और उसे नवीनतम रखा जाना चाहिये तथा (4) काश्तकारों के लिए ऋण और अन्य सुविधायें सुनिश्चित की जानी चाहिए ।

बिचौलियों का उन्मूलन करना भूमि सुधारों की दिशा में पहला कदम था और भूमि सुधारों को लागू किये जाने वाला सबसे पहला कार्यकम था । पश्चिम बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र और हैदराबाद जैसे सभी राज्यों ने, जहां जमींदारी प्रथा बड़े पैमाने पर प्रचलित थी, इस प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून को लागू करने में पहल की और 1949-52 की अवधि में कानूनी कार्रवाई पूरी की । बिचौलियों की पट्टेदारी समाप्त किये जाने से दो करोड़ से भी अधिक काश्तकारों का सीधे सरकार से सम्पर्क हो गया ।

निर्धारित सीमा से अधिक भूमि रखने के लिए देरी करने और दूसरी चालों के बावजूद अर्ध सामन्ती जमींदारों, जागीरदारों, दूरवासी जमींदारों को, जो ब्रिटिश शासकों के मित्र और रियासतों के राजाओं के पोषक थे, भूमि सुधारों से ऐसा धक्का लगा जिससे वे कभी नहीं उबर सके । बिचौलियों के राष्ट्र विरोधी चरित्र, राष्ट्रवादी संघर्ष के एक अंग के रूप में जमींदारों के खिलाफ किसानों के लम्बे संघर्ष, जमींदारों के ग्रामीण क्षेत्रों से विमुख होने, ग्रामीण क्षेत्रों में ताकत हथियाने के लिए जमींदारों और अन्य उच्च वर्गों में टकराव तथा इस भूमि सुधार की गांव के उच्च वर्गों के हितों को प्रभावित न करने की विशेषता को ही इस सुधार को लागू करने में मिली सफलता का श्रेय जाता है ।[13] जमींदारी बनाये रखने के समर्थकों ने कानून को बनने से रोकने, इसमें देरी करवाने या कानून को अपने हित में बनवाने के लिए हर तरह के हथकंडे अपनाये । जमींदारों को बड़े-बड़े मुआवजे दिये गये । उत्तर प्रदेश में जमींदारों में निजी सम्पत्ति का दावा करके और मालिक-कृषक

के अधिकार प्राप्त करके बहुत बड़े क्षेत्रों पर अपना कब्जा बनाये रखा । इस प्रक्रिया में बहुत सारे जमीन बोने वाले काश्तकारों को जमीन से बेदखल होना पड़ा । इससे बहुत सारे बिचौलिये पूंजीपति किसान बन गये । बिचौलियों को हटाये जाने के बाद भी भूमि स्वामित्व की असमानता बाकी रही । बटाई-दारों और खेतिहर मजदूरों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ हालांकि भूमि सुधारों के माध्यम से उन्हें दखलकारी के स्थायी, वंशागत और हस्तांतरणीय अधिकार दिये गये थे ।

लगान और पट्टेदारी की अवधि निश्चित करने के लिए पट्टेदारी सुधार भी असफलता का एक रिकार्ड है । छठे दशक के दौरान कानून द्वारा निर्धारित लगान कुछ राज्यों में कुल उपज का पांचवां और कुछ राज्यों में चौथाई भाग था । पट्टेदारी की न्यूनतम अवधि 5 से 10 वर्ष थी । बम्बई और हैदराबाद में प्रचलित कानून में संरक्षित काश्तकार का प्रावधान किया गया था जबकि आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु के कानून में ऐसी व्यवस्था नहीं थी । अनेक राज्यों के कानूनों में योजना आयोग की सिफारिशों की तुलना में कई कमियां थीं । कानून में यह अपेक्षा की गई थी कि दुखी काश्तकार पहल करेंगे और अदालतों में जाएंगे । उन्होंने यह कभी जाना ही नहीं कि कम लगान से उन्हें जो लाभ होगा वह कार्य पूंजी के लिए अधिक ब्याज, ट्रैक्टर के किराये, विक्री सेवा शुल्क, उपभोग ऋण आदि में समाप्त हो जाएगा । प्रशासनिक एजेंसी बड़ी संख्या में काश्तकारों और मालिकों के संबंध में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करके अपनी मौजूदा जिम्मेदारी को बढ़ाना नहीं चाहती थी । भूमि के रिकार्ड अक्सर बहुत ही गलत होते थे और मौखिक काश्तकारी तो भूमि रिकार्ड में कभी दर्ज ही नहीं की जाती थी । इसके अलावा बेदखली, स्वेच्छा से जमीन छोड़ने और अनौपचारिक पट्टेदारी के समझौते के भी मामले हुए । निष्क्रियता की आशंका को देखते हुए पट्टेदारी के काश्तकार लगान घटवाने के लिए अदालत में जाने की बजाय स्थिति को चुपचाप स्वीकार कर लेता था । पट्टेदारी का कानून लागू होने के बाद बड़े पैमाने पर पट्टेदारों की बेदखली हुई । छठे दशक के बाद के वर्षों में बेदखली की तेजी में कुछ कमी आई क्योंकि उस समय तक निहित स्वार्थों ने यह जान लिया था कि यह कानून केवल कागजी शेर था । जबकि शहरों में रहने वाले अनिवासी जमींदारों को पट्टेदारी कानून के तहत अपनी जमीन खोनी पड़ी, शक्तिशाली और उद्यमी आवासी जमींदारों ने स्वयं खेती करने के लिए अपने काश्तकारों को बेदखल कर दिया । छठे दशक के इन वर्षों में पट्टेदारी कानून के इस अवांछित प्रभाव से काश्तकार धीरे धीरे खत्म हो गया और वह धीरे-धीरे भूमिहीनों की श्रेणी में शामिल होता चला गया ।

छठे दशक में राज्यों में राजनीतिक शक्ति गांवों के भूमिपतियों के हाथ में जाने लगी । अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, राज्य विधान मंडलों और लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व बढ़ गया ।

तीसरे पहलू यानि जोत को अधिकतम सीमा के बारे में हालांकि पहली पंचवर्षीय योजना में अधिकतम सीमा निर्धारित करने के पक्ष में एक सिफारिश की गई थी । लेकिन किसी भी राज्य में इस संबंध में कानून लागू नहीं किया गया । दूसरी पंचवर्षीय योजना में ही इस संबंध में कार्रवाई शुरू की गई । लेकिन राज्यों में पार्टी के नेताओं ने इसके खिलाफ तर्क दिया । इसका नतीजा यह हुआ कि कानून बनने में देर हुई, कानून में परिवर्तन करके एक से अधिक वयस्क सदस्यों वाले परिवारों को रियायत दी गई, कुशलतापूर्वक संचालित फार्मों को अनेक छूटें दी गईं और कानून लागू होने से पूर्व भूमि के हस्तांतरण की अनुमति दी गई । भूमि रखने की अधिकतम सीमा लागू करने के सिद्वान्त की घोषणा पहली बार 1953 में की गई । इस संबंध में विस्तृत सिफारिशें 1956 में जाकर की गई । अधिकांश राज्यों ने 1960-61 तक इस संबंध में कानून ही नहीं बनाया । इस प्रकार अपनी जमीन का बंटवारा करने या उसका हस्तांतरण करने के लिए जमीन मालिकों के पास सात से आठ वर्ष का समय था । भूमि सीमा कानून से बचाने के लिए जाली सहकारी फार्म भी बन गये ।

छठे दशक के बाद के वर्षों में भूमि सीमा और जमीन के पुनर्वितरण के बारे में नये सिरे से दिलचस्पी ली गई । राजनीतिक स्थिति में आये परिवर्तन से इसके लिए रास्ता खुला । राजनीतिक दृष्टि से अपेक्षित, भूमिहीन और छोटे किसानों के लिए सीधी अपील करना अनिवार्य और लाभदायक लगा । बैंक राष्ट्रीयकरण,[14] प्रिवी पर्सों की समाप्ति और गरीबी हटाओ के नारे[16] और भूमि सीमा की जरूरत को प्रकाश में लाकर नीतियों को आंशिक रुप से क्रान्तिकारी रुप दिया गया । देश के कई भागों से कृषि क्षेत्र में असंतोष की रिपोर्टें मिलीं जिनका संबंध भूमि पट्टेदारी की अनुचित प्रणाली से था । पश्चिम बंगाल में नक्सलबाड़ी और केरल मे श्रीकाकुलम कृषि क्षेत्र में उग्र असंतोष के स्थान थे । पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकारों ने काश्तकारों के पक्ष में क्रान्तिकारी कानून लागू किये । केरल भूमि सुधार अधिनियम[17] (संशोधन अधिनियम 1969) में कुडीकिडप्पुकरन और काश्तकारों को बड़े पैमाने पर संरक्षण दिया गया ।

भूमि सीमा निर्धारित करने के लिए कानून बनाये जाने के लगातार खतरे के कारण बहुत बड़े जमींदारों ने अपनी भूमि का बंटवारा कर लिया। नई प्रौद्योगिकी के विकास के बावजूद फार्मों का विस्तार नहीं हो पाया। हालांकि भूमि सुधारों में अधिकतम भूमि-सीमा काफी कम कर दी गई थी, बहुत ही कम अतिरिक्त भूमि छोड़ी गई हालांकि भूमिहीनों की संख्या बढ़ती गई। एक अनुमान[18] के अनुसार कुल अतिरिक्त भूमि क्षेत्र 1.6375 करोड़ हैक्टेयर था लेकिन छठी पंचवर्षीय योजना के अनुसार विभिन्न राज्यों ने मार्च, 1980 तक केवल 15.74 लाख हैक्टेयर भूमि अतिरिक्त घोषित की थी। इतनी थोड़ी सी भूमि में से भी सरकार ने केवल लगभग 956 लाख हैक्टेयर भूमि का ही अधिग्रहण किया है। अतिरिक्त भूमि के वितरण के लगभग 11.54 लाख भूमिहीन लोगों को लाभ पहुंचा जिसमें से 6.13 लाख लोग अनुसूचित जातियों और जनजातियों के थे। 1960 में कुल भूमिहीन परिवारों की संख्या 1.946 करोड़ थी। यद्यपि धनवान किसानों की जोत का आकार 1960-61 से 1965-66 की अवधि में बढ़ा लेकिन इसके बाद इसमें तेजी से गिरावट आई और जात 25 एकड़ से बड़ी नहीं थीं। इसलिए 10 से 18 एकड़ की घनी फसल वाली निचली सीमा और शुष्क भूमि वाली 54 एकड़ की जोत को ग्रामीण समाज के उच्च वर्गों का कोई भय नहीं था।

**'नीति की सफलता उसके लागू होने में होती है। इस दृष्टि से ग्रामीण और कृषि विकास क्षेत्र में भूमि सुधारों को नीति निर्माण का सफल उदाहरण नहीं कहा जा सकता। भूमि सुधार के उपाय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उन हावी तत्वों के गढ़ को तोड़ने में नाकामयाब रहे जो कृषि सामग्री की सप्लाई, ऋण और बिक्री सुविधायें उपलब्ध कराने वाले दूसरे संस्थानों का लाभ स्वयं को मजबूत बनाने और अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए उठाते रहे हैं।'**

## भूमि सुधारों का क्रियान्वयन

भूमि सुधार को लागू करने के लिए किये गये उपायों में सुधार की काफी गुंजाईश थी। बड़े पैमाने पर इस बात की रिपोर्ट मिली कि भूमि सुधारों से संबंधित कानून को तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है। योजनाबद्ध रुप से बड़े पैमाने पर भूमि सुधारों का अतिक्रमण किया जा रहा था। ये भूमि सुधार ग्रामीण विकास की नीति का महत्वपूर्ण आधार थे। कृषि सुधारों के बारे में योजना आयोग के कार्यदल (1972)[19] ने बताया 'हमारे देश की सार्वजनिक गतिविधि के किसी भी क्षेत्र में अनुभूति और व्यवहार, नीति संबंधी घोषणाओं और वास्तविक कार्यान्वयन के बीच में इतनी अधिक रिक्तता कभी भी नहीं हुई जितनी कि भूमि सुधार के क्षेत्र में। "नीति को लागू करने की इच्छा का, विशेषकर राज्य स्तर पर, जहां राजनीतिक शक्ति का कृषि क्षेत्र की शक्ति से सीधा संबंध है, बहुत बड़ा अभाव है। इसके अलावा केन्द्रीय निर्देश में प्राय: अस्पष्टता भी देखने को मिली। भूमि सुधारों को लागू करने के प्रति नौकरशाही का यह रवैया आमतौर पर त्रुटिपूर्ण था।" यहां तक भूमि रिकार्ड की स्थिति, विशेषकर पूर्वी क्षेत्र में काफी खराब थी और उसे ठीक करने के लिए काफी काम करना जरूरी था। भूमि सीमा संबंधी कानूनों को लागू करने में राजस्व अधिकारियों के आदेशों के खिलाफ जमीन मालिकों द्वारा दाखिल की गई अपीलों को निपटाने में देरी करके रुकावट डाली गई।

कई मामलों में तो पट्टेदारी कानून की वजह से भूमि मालिक खुद खेती करने के आधार पर, जो भूमि सुधार कानून की एक बड़ी कमी थी, अपने काश्तकारों को बेदखल करने में सफल रहे।

भूमि मालिक अपनी जमीन अपने वारिसों में बांटकर भी अधिकतम सीमा कानून से बचते रहे। अधिकतम सीमा कानूनों के बावजूद एक व्यक्ति के पास बहुत अधिक जमीन होने की स्थिति में कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं आया है।[20] भूमि के वितरण में असमानता जारी रही जिसके फलस्वरूप आय और अन्य परिसम्पत्तियों के वितरण में भी असमानता बढ़ी।

## भूमि सुधारों का प्रभाव

गरीब किसान, भूमिहीन मजदूर और गांवों के दस्तकारों और कामगारों को भूमि सुधारों से बहुत ही कम लाभ हुआ। छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में मालिकों द्वारा स्वयं खेती करने की आड़ में बड़े पैमाने पर काश्तकारों को बेदखल किया गया। परम्परागत बटाईदारी प्रथा तो बड़े पैमाने पर जारी रही लेकिन काश्तकारी के कई शोषणकारी अप्रत्यक्ष रूप उभरने लगे। तीसरी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में यह आशंका व्यक्त की गई थी कि कुछ क्षेत्रों में भूमिहीन श्रमिकों की स्थिति और खराब हुई है। कारखानों में बने सामान के आ जाने के बाद यही बात गांवों के दस्तकारों और कामगारों के बारे में भी सही थी।

भूमि सुधार कानूनों की एक विशेषता यह भी थी कि कृषि विकास और ग्रामीण विकास के बीच संबंध की हमेशा स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई । भूमि सुधारों को कृषि क्षेत्र की उत्पादक क्षमता में सुधार लाने के प्रयास की अपेक्षा कमजोर वर्गों की समस्याओं को दूर करके उनकी स्थिति में सुधार लाने वाले उपायों के रुप में लिया जाता था । राज्यों में भूमि सुधार विषय की देखरेख कृषि विभाग द्वारा न की जाकर राजस्व विभाग द्वारा की जाती थी । परिणाम यह हुआ कि उन किसानों को, जिन्हें अतिरिक्त भूमि का वितरण किया गया या बटाईदारों और काश्तकारों को भी खाद, बीज जैसी आवश्यक चीजें और विस्तार सेवायें मुहैया कराने की तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया गया ।

भूमि सुधार कृषि के ढांचे को अधिक समान आधार देने और इस प्रकार अधिक उत्पादक बनाने में विफल रहे । कृषि क्षेत्र में राहत देने वाली एकमात्र बात यह हुई कि छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में 17 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई । समय बीतने के साथ-साथ उत्तराधिकार और बड़े पैमाने पर जाली हस्तांतरणों के माध्यम से भूमि जोत के बढ़ते चले जाने से भूमि सुधार उपायों की प्रभावशीलता समाप्त हो गई ।

अदालतों के प्रतिकूल फैसलों का भी भूमि सुधार उपायों पर बुरा प्रभाव पड़ा । कानून की भाषा सटीक न होने के कारण अदालतों को भूमि सुधार कानूनों को रद्द करने या उनमें परिवर्तन कराने का भी अवसर मिला और अदालतों ने "नियमित रुप से विशेष उत्साह[21]" के साथ ऐसा किया । उदाहरण के तौर पर उच्चतम न्यायालय ने यह फैसला दिया कि केरल भूमि संबंध अधिनियम, 1961 संविधान के अनुच्छेद 31 ए में दिये गये उस सरंक्षण के तहत नहीं आता है जिसमें राज्य को किसी सम्पत्ति या उसके अधिकार का अधिग्रहण करने पर अनुच्छेद 31,14,19 और 25 (1) में दी गई सम्पत्ति की गारंटियों और सभी कानूनों से छूट दी गई है । न्यायालय का तर्क यह था कि अनुच्छेद 31 ए उन्हीं भूधारण के संबंध में है जो संविधान लागू होने के दिन, 26 जनवरी, 1950 को स्थानीय कानून के हिसाब से सम्पत्ति की श्रेणी में आते थे । रैयतदारी सम्पत्ति नहीं थी इसलिए केरल भूमि संबंध अधिनियम के मुआवजा संबंधी प्रावधान संविधान की दृष्टि से अवैध थे । सातवां दशक समाप्त होने तक बाजार मूल्य से कम दर पर मुआवजा देने संबंधी रुकावटें दूर कर दी गई थीं और ऐसे कानून बनाने में बाधा पैदा करने के अदालतों के अधिकारों में प्रभावी रुप से कटौती कर दी गई थी ।

यह ठीक ही कहा गया है नीति की सफलता उसके लागू होने में होती है । इस दृष्टि से ग्रामीण और कृषि विकास क्षेत्र में भूमि सुधारों को नीति निमार्ण का सफल उदाहरण नहीं कहा जा सकता । भूमि सुधार के उपाय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उन हावी तत्वों के गढ़ को तोड़ने में नाकामयाब रहे जो कृषि सामग्री की सप्लाई, ऋण और बिक्री सुविधायें उपलब्ध कराने वाले दूसरे संस्थानों का लाभ स्वयं को मजबूत बनाने और अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए उठाते रहे हैं । एक नीतिगत विकल्प यह था कि इन संस्थाओं का इस्तेमाल असमानता को बढ़ने से रोकने के लिए प्रतिसंतुलनकारी ताकत के रुप में किया जाए लेकिन ऐसा नहीं हुआ क्योंकि धनी किसान सहकारी संस्थाओं और पंचायत राज्य संस्थानों पर हावी रहे ।

सातवें दशक के प्रारंभिक वर्षों में नीति पर दबाव डालने वाली उत्पादन संबंधी समस्याओं के कारण भूमि सुधार पृष्ठभूमि में चले गये । बल इस बात पर दिया गया कि काश्तकारों के अधिकार के रिकार्ड, कम लगान और पट्टेदारी की सुरक्षा संबंधी कानून को बेहतर रुप से लागू किया जाये । गुजरात, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश के तेलंगाना इलाके में काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व देने में कुछ सफलता मिली । पहले की जमींदारी प्रणाली में उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल राज्यों में स्वामी पट्टेदारों को लाभ हुआ लेकिन काश्तकारों और बटाईदारों को कोई फायदा नहीं हुआ । सातवें दशक के आरम्भ में केरल राज्य ने क्रान्तिकारी सुधार लाने के लिए कानून बनाये । बिहार में पूर्णियां और सहरसा जिलों को शामिल करने वाली कोसी सिंचाई परियोजना के जल के अपर्याप्त इस्तेमाल तथा इन जिलों में बड़े पैमाने पर प्रचलित बटाईदारी प्रथा के साथ इसके संबंध से यह स्पष्ट हो गया कि पट्टेदारी प्रणाली किस तरह उत्पादन के प्रयासों में बाधक हो सकती है ।

नई प्रौद्योगिकी के प्रचलन से काश्तकारों के क्षेत्र और कुल खेती क्षेत्र का अनुपात तेजी से घटा । उत्तर-पश्चिम के गेहूं और दक्षिण के चावल की फसल वाले इलाकों में स्वयं खेती करने के लिए जमींदार बड़े पैमाने पर अपनी जमीनें वापिस लेने लगे । जहां काश्तकारों को रखा गया वहां उनका नकद लगाम एक तिहाई से आधा बढ़ा दिया गया । पंजाब, जहां खेतिहर मजदूरों की कमी रहती थी, नई प्रौद्योगिकी के प्रसार से मालिक-काश्तकारी की जोत का आकार काफी बढ़ा, काश्तकारों की बेदखली हुई, भूमिहीन लोगों की संख्या बढ़ी, और बिना किसी तात्कालिक तनाव के मशीनों का इस्तेमाल बढ़ा और इससे उत्पादकता में वृद्धि हुई । बड़े किसान छोटे किसानों की भूमि भी लेने लगे ।

**'भूमि सुधारों का उद्देश्य भूमि के स्वामित्व में कमी लाना, श्रम संसाधनों को एकजुट करने के लिए संस्थागत ढांचे के विकास में सहायता करना है । लेकिन इसे सावधानी के साथ विकास कार्यक्रमों से जोड़ना होगा । भूमि सुधारों के काम में विकास संस्थाओं को शामिल किये जाने का एकमात्र उदाहरण तत्कालीन काठियावाड़ रियासत में हुआ जहां भूमि विकास बैंकों ने काश्तकारों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई ताकि वे तत्कालीन जमींदारों को उनकी जमीनों का मुआवजा दे सकें । यह प्रयोग बहुत ही सफल रहा लेकिन इसे देश के दूसरे भागों में नहीं अपनाया गया ।'**

राज्यों में भूमि सुधारों की देखरेख के प्रभारी राजस्व, प्रशासन और कृषि विभाग के अलग-अलग होने के कारण भूमि सुधार नीति और कृषि विकास नीति के बीच समन्वय लाना बहुत कठिन हो गया । भूमि सुधारों का उद्देश्य भूमि के स्वामित्व में कमी लाना, श्रम संसाधनों को एकजुट करने के लिए संस्थागत ढांचे के विकास में सहायता करना है । लेकिन इसे सावधानी के साथ विकास कार्यक्रमों से जोड़ना होगा । भूमि सुधारों के काम में विकास संस्थाओं को शामिल किये जाने का एकमात्र उदाहरण तत्कालीन काठियावाड़ रियासत में हुआ जहां भूमि विकास बैंकों ने काश्तकारों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई ताकि वे तत्कालीन जमींदारों को उनकी जमीनों का मुआवजा दे सकें । यह प्रयोग बहुत ही सफल रहा लेकिन इसे देश के दूसरे भागों में नहीं अपनाया गया ।

भूमि सुधारों के बावजूद कृषि भूमि का स्वरूप असमान रहा है । एक चौथाई से भी कम ग्रामीण परिवारों का 70 प्रतिशत से भी अधिक भूमि पर कब्जा था और एक तिहाई परिवारों के पास 30 प्रतिशत भूमि थी । बाकी 2/5 लोग भूमिहीन थे जो मजदूरी करके अपना गुजारा करते थे ।

यह कहा जाता है कि भूमि सुधारों की विफलता और विशेषकर शोषण की प्रवृत्ति बने रहने के कारण राजनीतिक इच्छा का अभाव, राजनीतिक नेतृत्व और नौकरशाही में विशिष्ट वर्ग का वर्चस्व तथा भूमिस्वामित्व और अन्य परिसम्पत्तियों के वितरण में असमानताएं होना है । "धनी किसानों और गांवों के सत्ता स्वरूप के बीच मेल, निचले स्तर पर उपेक्षित लोगों की आवाज उठाने के लिए राजनीतिक समूहों की अनुपस्थिति में राजनीतिक स्वरूप और नौकरशाही का प्रभुत्व भूमि सुधारों के गैर प्रभावी कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार थे ।"

रोनाल्ड हेरिंग[22] के शब्दों में "साधारण राजनीतिक के तहत झुकने की प्रवृत्ति और साधारण न्यायिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की विशेषता ने उद्देश्यपूर्ण भूमि सुधारों के प्रयास को विफल कर दिया है । प्रशासनिक तंत्र में भूमि सुधारों को लागू करने के प्रति वचनबद्धता का अभाव था । नौकरशाही की जड़ता, सुस्ती और मिलीभगत के कारण भूमि सुधारों को लागू करने में विफलता मिली । अधिकारियों ने सुधारवाद के स्थान पर रूढ़िवाद के पक्ष में त्रुटियां कीं क्योंकि वे यह समझते थे कि कुछ कानून केवल प्रतीक के रूप में होते हैं न कि गंभीरतापूर्वक लागू करने के लिए ।"

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण 23 के 26 वें सर्वेक्षण के अनुसार देश के 10 करोड़ परिवारों में से 1.72 करोड़ परिवारों के पास कोई जमीन नहीं है और न ही वे किसी भी जमीन पर खेती आदि करते हैं । 3.56 करोड़ परिवारों के पास एक एकड़ से भी कम भूमि है । लगभग 1.5 करोड़ परिवार तो ऐसे हैं जिनके पास एक हैक्टेयर से भी कम जमीन है । यदि इन सब को कम से कम एक हैक्टेयर भूमि उपलब्ध करानी हो तो 5.8 करोड़ हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि की जरुरत होगी ।

1 हैक्टेयर से कम क्षेत्र वाले खेतों को कम से कम एक हैक्टेयर का बनाने के लिए, यदि 4 हैक्टेयर की अधिकतम सीमा लागू कर दीं जाए तो पर्याप्त भूमि मिल जाएगी । यदि 10 हैक्टेयर की अधिकतम सीमा लागू की जाये तो एक हैक्टेयर से कम वाले 50 प्रतिशत खेतों को एक हैक्टेयर के स्तर पर लाया जा सकता है । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भूमि का फिर से वितरण करके भूमिहीन लोगों की गरीबी दूर करने के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध नहीं है । केक बहुत ही छोटा है ।

## सन्दर्भ


1. नानावती, मणिलाल बी एंड अंजारिया, जे.जे. द इंडियन रूरल प्राब्लम छठा संस्करण, बम्बई : इंडियन सोसायटी ऑफ एग्रीकल्चरल इकनॉमिक्स (1965)
2. वाडिया, पी.ए.एंड मर्चेन्ट, के.टी.अवर इकनोमिक प्रॉब्लम, पांचवां संस्करण, बम्बई, वोरा, 1957
3. दत्त, आर.सी. द इकनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया दिल्ली, पब्लिकेशन डिवीजन, 1960 (पुन: मुद्रित)
4. कांग्रेस का फैजपुर अधिवेशन, दिसम्बर (27-28) 1936 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विश्व कोष, खंड ग्यारह, 1936-1938, पृष्ठ 181 ओपी.सीआईटी.
5. ए आई सी सी की बैठक (दिसम्बर 1948), जयपुर, वही, खंड संख्या 13, 1946-1950 (पचपनवां अधिवेशन) पृष्ठ 145
6. कांग्रेस की भूमि सुधार समिति की रिपोर्ट, जुलाई 1947 । अध्यक्ष : कुमारप्पा ।
7. भारत सरकार पांचवी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप (1947-79 खंड 2, अध्याय 1, योजना आयोग नई दिल्ली, 1973, ओपी.सीआईटी.
8. कांग्रेस चुनाव घोषणा पत्र (1946) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विश्व कोष खंड 13, 1946-50, इंडिया विन्स फ्रीडम (एम.एम. और एस.सी. जैदी संस्करण) इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड पोलिटिकल रिसर्च ।.एस.चांद एंड कं.लि., नई दिल्ली । ''यह सम्मेलन अगस्त के प्रस्ताव में वर्णित सिद्धान्तों और कार्यक्रमों तथा स्वराज के सन्दर्भ में कांग्रेस के चुनाव घोषणा पत्र का अनुमोदन करता है । इस विचार से कांग्रेस का स्वराज आम जनता के लिए तब तक वास्तविक नहीं हो सकता जब तक कि ऐसे समाज में जहां राजनीति से लेकर सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र तक लोकतंत्र हो, उपलब्धि संभव नहीं हो जाती और जिस समाज में सुविधा सम्पन्न लोगों के लिए आम लोगों का शोषण करने का कोई अवसर नहीं मिल सके और न ही उनके लिए वर्तमान जैसी विषमताओं को बढ़ाने का अवसर हो । ऐसा समाज व्यक्तिगत स्वतंत्रता, अवसर की समानता और प्रत्येक नागरिक को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए पूर्ण अवसर सुनिश्चित करा सकता है ।''
9. कांग्रेस भूमि सुधार समिति की रिपोर्ट (1947), ओपी. सी आई.टी.
10. फ्रेनसिन आर. फ्रेकेल–''इंडियाज पोलिटिकल इकानॉमी 1947-77; द ग्रेजुअल रिवोल्यूशन ।'' दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978, पृष्ठ 119.
11. इंडिया, योजना आयोग, द सेकेन्ड फाइव ईयर प्लान, 1956-61, नई दिल्ली, प्रकाशन नियन्त्रक ।
12. इंडिया, योजना आयोग, द थर्ड फाइव ईयर प्लान 1961-66 नई दिल्ली, प्रकाशन नियंत्रक
13. पार्थसारथी, जी.जी. ''लैंड रिफार्मस एंड चेंजिंग स्ट्रक्चर'' इन एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट इन इंडिया–पॉलिसी एंड प्राब्लम्स ।'' सी.एस.शाह द्वारा सम्पादित, ओरियेन्ट लॉगमैन लिमिटेड, बम्बई, 1979.
14. बैंकों का राष्ट्रीयकरण । (जुलाई 1969, 15 सबसे बड़े वाणिज्यिक बैंक) इंटर इंडिया पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1979.
15. प्रिवी पर्स की समाप्ति । महेन्द्रु, के.सी. द पोलिटिक्स ऑफ प्रिवी पर्सेस (भारत की संसद ने प्रिवी पर्सेस के मामले का अध्ययन किया) लुधियाना, कल्याणी, 1971 ।
16. गरीबी हटाओ । पहली जुलाई, 1975 को प्रधानमंत्री ने आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा की जो बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के रुप में लोक प्रिय हुआ । गांवों के गरीब लोगों के लिए कार्यक्रम में बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम का बहुत ही महत्वपूर्ण भाग है । ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने तथा उत्पादन को बढ़ाने के लिए वे बुनियादी महत्व के हैं ।
17. केरल भूमि सुधार अधिनियम (संशोधन अधिनियम, 1959)
18. सिद्धु बी.एस. ''लैण्ड रिफार्म, वेल्फेयर इकनामिक ग्रोथ ।'' बम्बई वोरा, 1976 ।
19. इंडिया, भूमि संबंध पर कार्य दल के बारे में योजना आयोग, की रिपोर्ट (1972), रिपोर्ट 1973 । नई दिल्ली भारत सरकार, 1973.
20. शाह सी. एच. ''ग्रोथ एंड इनइक्विलिटी इन एग्रीकल्चर'' इन एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट ऑफ इंडिया–पालिसी एंड

प्राब्लम्स, ओरियेन्ट लागमैन, 1978
21. रोनाल्ड जे. हेरिंग "लैंड टु द टिलर—द पोलिटिकल इकनॉमी ऑफ एग्रेरियन रिफार्म इन साउथ एशिया, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983
22. वही, पृष्ठ 42
23. राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण, संख्या 255 ए । भारत के बारे में रोजगार और बेरोजगारी की स्थिति।रोजगार पर आधारित एक प्रारंभिक अध्ययन । बेरोजगारी सर्वेक्षण एन एस एस-27 वां सर्वेक्षण 1972-73 (सांख्यिकीय विभाग, योजना मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1976) पृष्ठ 111.

अनुवाद : नरेन्द्र सिंह
349 कटरा बूधान राय
दिल्ली गेट,
नई दिल्ली-110002

लोग यह कहकर भूदान की आलोचना करते थे कि इससे जमीन छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जायेगी । मेरा कहना था कि मेरा काम जमीन के टुकड़े करना नहीं है बल्कि बंटे हुए हिस्सों को जोड़ना है । दिलों को जोड़ना ही भूदान का मुख्य लक्ष्य है । जब यह हो जायेगा तो सब कुछ हो सकेगा ।

***

**विनोबा भावे**

# मेहनत रंग लाती है

जोधपुर जिले के मरूस्थलीय खण्ड जालेसर पंचायत समिति का नीम्बों का गांव चारों तरफ रेत के टीलों से घिरा एक गांव है । वहां की प्राथमिक शाला को ग्रामवासियों ने अपनी मेहनत और श्रमदान के माध्यम से इतना साफ सुथरा व दर्शनीय बना रखा है कि यह शाला मरू क्षेत्र में भी रमणीक स्थान बन गयी है ।

5 वर्ष पूर्व यह विद्यालय झोपड़ियों में चलता था लेकिन ग्रामीणों की लगन, परिश्रम व श्रमदान से यह शाला एक भव्य इमारत के रुप में बदल गयी है । ग्रामीणों ने जन सहयोग व सरकार से प्राप्त धनराशि का सही उपयोग कर आठ कमरों का निर्माण करवा दिया है साथ ही विद्यालय के चारों ओर अहाता भी बनाया गया है ।

कुछ वर्ष पूर्व जो विद्यालय झोपड़ियों में था अब भवन में बदलने का राज खोलते हुए विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने बताया कि यह सब ग्रामीणों के सहयोग व समन्वय से ही संभव हो पाया है । प्रधानाध्यापक ने बताया कि विद्यालय वैसे तो मरू क्षेत्र में है लेकिन विद्यालय के छात्रों की मेहनत से उसके सम्पूर्ण अहाता क्षेत्र को हरी-हरी घास से आच्छादित कर दिया है । विद्यालय परिसर में प्रवेश के बाद ऐसा नहीं लगता कि आने वाला व्यक्ति मरू क्षेत्र में आ गया है । बालकों के परिश्रम से लगे पेड़ों व हरियाली से परिसर हरा भरा नजर आता है ।

इस शाला में पढ़ने वाले बच्चे पढ़ाई में भी पीछे नहीं हैं । गत पांच वर्षों का परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत के करीब रहा है । इस विद्यालय से पढ़ाई करने वाले अनेक छात्र आज पुलिस, सेना, राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में कार्यरत हैं । □

**बजरंगसिंह शैखावत**
**क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी, जोधपुर**

# भूमि सुधार बनाम ग्रामीण विकास व निर्धनता निवारण

डा. राकेश कुमार अग्रवाल

महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत गांवों का देश है और कृषि भारत की आत्मा है । अनन्त काल से भारत की अर्थ-व्यवस्था कृषि प्रधान रही है । भारत की 76.69 प्रतिशत जनसंख्या 5, 57,139 गांवों मे वास करती है । फिर भी भारत की कृषि पिछड़ी अवस्था में है । कृषि उत्पादकता अपेक्षाकृत कम है । गरीबी गांवों का पीछा नहीं छोड़ रही है । जबकि सरकार द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कृषि साख, सिंचाई, यन्त्र, उर्वरक इत्यादि की पर्याप्त पूर्ति करके कृषि उत्पादन बढ़ाने के व्यापक प्रयत्न किये गये हैं । ग्रामीण विकास एवं निर्धनता निवारण के लिए अनेक योजनायें व कार्यक्रम चलाये गये हैं ।

किसी भी ग्रामीण विकास कार्यक्रम से तब तक लाभदायक एवं उत्साहवर्द्धक परिणाम नहीं निकल सकते जब तक कि भूमि व्यवस्था की प्रणाली उपयुक्त न हो । डा. राधा कमल मुखर्जी ने 'लैण्ड रिफार्म इन इण्डिया' में लिखा है, "वैज्ञानिक कृषि या सहकारिता को हम कितना भी अपना लें इनसे पूर्ण सफलता तब तक प्राप्ति नहीं होगी जब तक कि हम भूमि व्यवस्था में सुधार नहीं करते ।" श्री नानावती अन्जारिया ने भी स्पष्ट कहा है कि जब तक भारत में भूमि की उत्पादकता पर दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था के कुप्रभावों की उपेक्षा की जाती रहेगी तब तक कृषि नियोजन का कोई भी कार्यक्रम अच्छे परिणाम नहीं दिखला सकता ।

कृषि विकास कार्यक्रमों की सफलता की दृष्टि से भूमि सुधार के प्रयत्नों का विशेष महत्व है । जिनके द्वारा भूमि का स्वामित्व सही व्यक्ति के हाथों में आ जाता है और जो ग्रामीण समाज जीवन में अनुकूल परिवर्तन का कारण बनता है । भूमि से अपनत्व रखने वाला कृषक ही वास्तव में कृषि विकास में योगदान कर सकता है । अर्थशास्त्री आर्थरयंग ने लिखा है, "निजी भूमि का जादू रेत को भी सोना बना देता है । किसी व्यक्ति को कठोर बंजर भूमि का सुरक्षित स्वामित्व दे दिया जाये तो वह उसे हरे-भरे उपवन में बदल देगा और यदि उसे कुछ वर्षों के लिए ठेके पर एक उपवन दे दिया जाये तो वह उसे बंजर में बदल देगा ।" इस आशय से भूमि व्यवस्था में सुधार एक आवश्यक प्रक्रिया प्रतीत होती है । प्रो. सेम्युलसन ने भूमि सुधार कार्यक्रमों के महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि "सफल भूमि सुधार कार्यक्रमों ने अनेक देशों में मिट्टी को सोने में बदल दिया है ।"

## भूमि सुधार की आवश्यकता

भारत में एक तो जनसंख्या की तुलना में कृषि योग्य भूमि कम है दूसरे यह भूमि कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित रही है । जिस कारण छोटी और अनार्थिक जोतों की अधिकता हो गयी । अधिकांश कृषक भूमिहीन श्रमिक के रुप में शोषण का शिकार होते

रहे। जिस कारण उन्होंने भूमि पर स्थायी सुधार में कोई रूचि नहीं दिखाई। परिणामस्वरुप कम उत्पादन और अधिक लगान के कारण भूमिहीन और सीमान्त कृषक ऋणी और गरीब होते चले गये। यह स्थिति गावों के विकास में बाधक बनी रही तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था कमजोर हो गयी। अतः गांवों के सामाजिक, आर्थिक उत्थान हेतु भूमि सुधार की आवश्यकता अनुभव की गयी।

## कृषि उत्पादन में वृद्धि

दोषपूर्ण भूमि व्यवस्थाओं के कारण उप-विभाजन और अपखण्डन द्वारा भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखर गयी। जिस कारण कृषि की उन्नत प्रणालियों को नहीं अपनाया जा सकता था। फलस्वरुप कृषि उत्पादकता निम्न रही। भूमि सुधार के माध्यम से एक ओर भूमिहीन कृषकों को भू-स्वामित्व प्राप्त होता है दूसरी ओर भूमि की सीमा निर्धारण से आर्थिक जोतों की स्थापना होती है। जिस कारण कृषकों का कृषि कार्य के प्रति स्वभाविक रुप से लगाव बढ़ता है और कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है। वास्तव में विकासशील देश के योजनाबद्ध विकास में कृषि उत्पादन का विशेष महत्व होता है। कृषि उत्पादकता में कमी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के रोगग्रस्त होने का लक्षण है। भूमि सुधार का प्रत्येक कदम एक औषधि का कार्य करता है और कृषि उत्पादन में आने वाली बाधायें दूर हो जाती हैं।

## निर्धनता निवारण

भू-स्वामित्व के दोषपूर्ण वितरण के कारण अधिकसंख्य कृषक भूमिहीन अथवा नाम मात्र की भूमि रखने वाले हैं जो उनकी निर्धनता का प्रमुख कारण हैं। निर्धनता इन ग्रामीणों की नियति बन गयी है। यहां तक कि यह कहावत बन गयी है कि भारत का किसान गरीबी में जन्म लेता है और गरीबी में ही मर जाता है। भूमि सुधार द्वारा भू-स्वामित्व के पुनर्वितरण से भूमि पर आधारित तथा अन्य पूरक आय प्रदान करने वाले कार्यों द्वारा कृषकों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार होता है। वे ग्रामीण विकास का महत्वपूर्ण घटक बनते हैं। इस प्रकार भूमि सुधार के कार्यक्रम ग्रामीण गरीब की दशा सुधार कर ग्रामीण विकास में योगदान करते हैं। फिर सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनुकूल परिवर्तन परिलक्षित होता है। इसीलिए सातवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार के उपायों को गरीबी प्रतिरोधी नीति तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का आन्तरिक भाग माना गया है।

## सामाजिक न्याय

कारवर ने कहा है कि "युद्ध, महामारी और अकाल के बाद ग्रामीण जनता के लिए सबसे बुरी वस्तु जो है वह है अनुपस्थित भूमि स्वामित्व।" ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सीमान्त तथा भूमिहीन कृषकों का मानसिक, शारीरिक व आर्थिक शोषण परम्परा से होता आया है। इस शोषण को सहने के लिए ये कृषक प्रकृति से विवश रहे हैं। अर्ध-सामन्ती बेड़ियां ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास, उनकी सामाजिक प्रगति और ग्रामीणों की सृजनात्मक शक्ति की उपलब्धियों में बाधा डालती हैं। भूमि सुधार के प्रयत्न इन दशाओं में सुधार तथा ग्रामीणों के शोषण को समाप्त करने के लिए किये जाते हैं। ग्रामीण जनता के सभी वर्गों को काश्त के समान अवसर द्वारा सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने का भाव भूमि सुधार के साथ जुड़ा है। इस प्रकार भूमि सुधार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में, व्याप्त सामाजिक विषमतायें दूर होकर समानतावादी सामाजिक ढांचे की स्थापना होती है।

## भूमि सुधार सम्बन्धी उपाय

देश की स्वतन्त्रता आन्दोलन में ग्रामीण शोषित, भूमिहीनों, असहायों और गरीबों ने जो उत्साह दिखाया उसके पीछे उनके मन में स्वराज का अर्थ भूमि स्वामित्व व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन था जो उन्हें गरीबी के बोझ से मुक्त करेगा और भूमिहीनों को भूमि प्राप्त होगी। इस प्रकार भूमि सुधार एक राष्ट्रीय दायित्व बन गया जिसको पूरा करने के लिए आजादी के तुरन्त बाद से ही व्यापक प्रयत्न किये गये हैं।

## मध्यस्थों की समाप्ति

भूमि को जोतने वाले कृषकों और सरकार के बीच मध्यस्थों की विद्यमानता ने कृषि के विकास में बड़ी बाधाएं खड़ी कीं। आजादी से पूर्व ब्रिटिश नीति के फलस्वरुप देश में रैयतवाड़ी, महालवाड़ी तथा जमींदारी तीन प्रकार की भूमि व्यवस्थाओं का जन्म हुआ। जिनके कारण गांवों की सामुदायिक एकता भंग हो गयी। पारस्परिक सहयोग के स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थपरता, परिश्रम के स्थान पर अकर्मण्यता और बेगार तथा सामाजिक न्याय के स्थान पर शोषण पनपने लगा। भू-स्वामित्व में भारी असमानताएं पैदा हो गयीं जिससे भूमि का अधिकांश भाग थोड़े से व्यक्तियों के पास रहा और अधिकांश कृषक या तो भूमिहीन रहे या उनके पास बहुत थोड़ी भूमि रही।

यह विडम्बना ही कही जा सकती है कि कृषकों का शोषण इस वर्ग ने किया जिसका प्रत्यक्ष रुप से कृषि से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह वर्ग किसानों का निरंकुश सम्राट बन बैठा था। डा. राधाकमल मुखर्जी ने कहा है कि "एक ओर तो कृषकों की आय का

आयोजना, फसल बीमा, अनाज वसूली आदि कार्यों के लिए भी बहुधा जरूरत पड़ती है।

**भूमि चकबन्दी**

बिखरे हुए छोटे-छोटे खेत कृषि उत्पादकता को कम करते हैं। कृषकों के समय व शक्ति की बरबादी होती है। इसीलिए कृषि में कारगर व किफायत लाने के उद्देश्य से छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटी अपखण्डित भूमि की चकबन्दी करना आवश्यक समझा जाता है। भारत में 22 में से 15 राज्यों में चकबन्दी के लिए कानून बनाये जा चुके है इनमें से अधिकांश में अनिवार्य चकबन्दी की व्यवस्था है। कुछ राज्यों में स्वैच्छिक चकबन्दी है। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान 63.16 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी की गयी। अब तक कुल 526.6 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी हो चुकी है यह कृषि भूमि का 34 प्रतिशत भाग है। सातवीं योजना में कुल चकबन्दी योग्य भूमि सुधार के प्रयत्नों में चकबन्दी भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में कारगर सिद्ध होती है।

उपरोक्त प्रयत्नों के अलावा सहकारी कृषि, भू-दान आन्दोलन आदि के द्वारा भी भूमि सुधार के कार्य को गति मिली है।

**भूमि सुधार प्रयत्नों की सार्थकता**

विगत वर्षों में भूमि सुधार के लिए उठाये गये कदम ग्रामीण विकास व निर्धनता निवारण तथा सामाजिक न्याय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। किन्तु इसके लिए बनाये गये कानूनों का कार्यान्वयन प्रभावी ढंग से नहीं हो सका है जिससे वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति पर प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने मार्च 1976 में मुख्यमन्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि "मेरे विचार में भूमि सुधार के कार्यान्वयन में कुछ सीमा तक निष्क्रियता रही है जिसका कारण या तो वे लोग जो निहित स्वार्थों के कारण यह सुधार चाहते ही नहीं हैं या उनमें भूमि सुधार की महत्वपूर्ण भूमिका को सही ढंग से समझने की व्यापक कमी है।" प्रो. दन्तवाला ने भी कहा है कि "भूमि सुधार के लिए उठाये गये अब तक के पग निश्चय ही सन्तोषजनक हैं, किन्तु इन्हें उचित रुप में लागू करने के अभाव में इनका परिणाम सन्तोषजनक नहीं है अत: नीति, कानून और कार्यान्वयन के बीच की मौजूदा दरार को पाटने की आवश्यकता है।"

भूमि सुधार के लिए नयी दिशा निर्धारित करना जरुरी है ताकि इसका ग्रामीणों की गरीबी हटाने और उनके सामाजिक स्तर को सुधारने के लिए प्रभावी उपकरण के रूप में प्रयोग किया जा सके। इसके साथ ही आधुनिक विधियों व तकनीकों से कृषि उत्पादन बढ़ाना जरुरी है। समग्र ग्रामीण विकास के भूमि सुधार की धुरी के साथ समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम, मरुभूमि विकास कार्यक्रम आदि को जोड़ा जाना चाहिए तभी भूमि सुधार कार्यक्रम सार्थक होगा।

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या सीमित भूमि के सामने जटिल प्रश्न खड़ा कर देती है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ-साथ भूमिहीनों और गरीबों की संख्या में भी वृद्धि होती है। जिसके परिणामस्वरुप भूमि सुधार का रास्ता और भी कठिन व लम्बा हो जाता है। अत: इस आशय से भी भूमि सुधार की सफलता के लिए सामाजिक जागरूकता की नितान्त आवश्यकता है।

**एस.एस.वी. (पी.जी.) कालेज,**
**"हिमदीप" राधापुरी**
**हापुड़-245101 (उ.प्र.)**

**बचत आपको सुरक्षा ही प्रदान नहीं करती,**
**वह राष्ट्र निर्माण में भी सहायक है।**

ास आर्थिक गतिविधियां
द मिलती है ।

ता कार्यक्रम के अंतर्गत

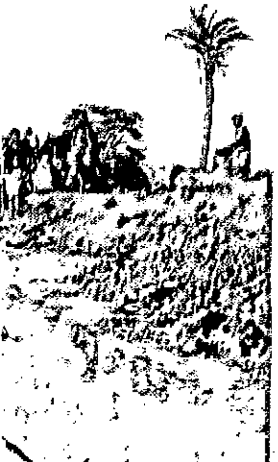

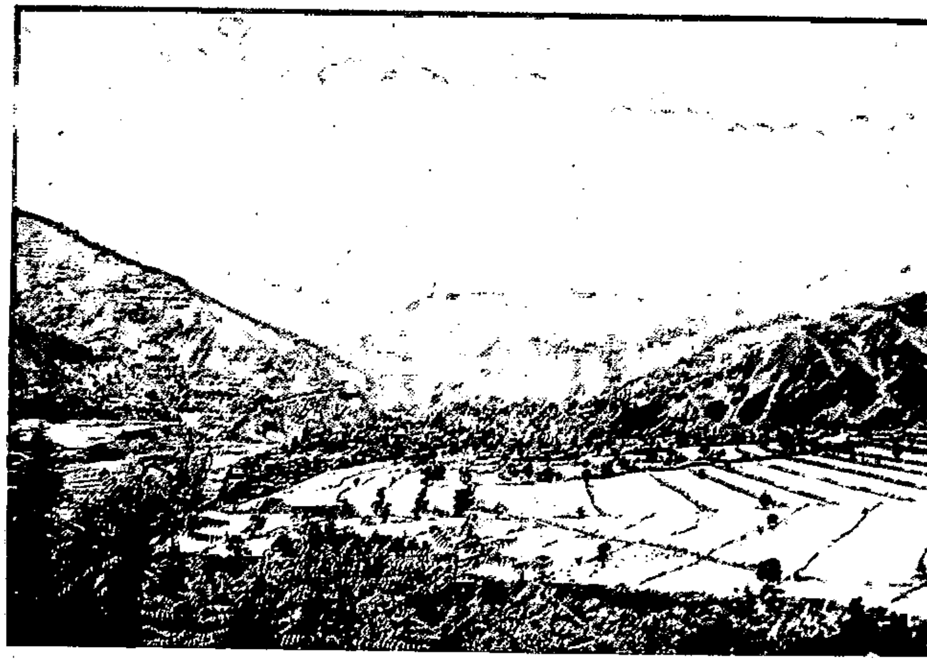

पहाड़ी ढलानों पर खेती करने से जमीन को और अधिक इस्तेमाल करने में मदद मिलती है ।

भूमि विकास और ग्राम विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत सिंचाई सुविधाएं जुटाई जाती हैं ।

विभिन्न भूमि सुधार कार्यक्रमों से अनेक लोगों को रोजगार मिलता है ।

जमीन को समतल बनाना भूमि सुधार कार्यक्रम का अभिन्न अंग है ।

# जब बब्बू बाबू बन गया

डा.एल.बी. बाजपेयी

झोपड़ी के अन्दर बैठा सोच रहा था, न जाने अभी और कितने दिन भूखों मरना पड़ेगा। कुछ भी तो घर में नहीं है, बब्बू को क्या दे दूं। झोपड़ी के चारों ओर नजर दौड़ाता है, एक टूटी खाट उसी के नीचे वर्षों पुराना मिट्टी का घड़ा, जिसमें पीने का पानी है, एल्यूमीनियम का एक कटोरा और बांस का टेढ़ा-मेढ़ा डण्डा तथा दो झोलियां छाजन में खुंसी हुयी हैं। बस ददुवा की इतनी ही गृहस्थी है। बब्बू की मां पिछले साल बीमारी से स्वर्ग सिधार गयी। आठ साल का बब्बू भूख के मारे तड़प रहा है। बब्बू झोपड़ी में घुसता है, ददुवा के गले से लिपट कर, "ददुवा बड़ी भूख लगी है," ददुवा छाजन में खुंसी हुयी झोलियां निकालता है और महीनों बासी-सूखी पूड़ियों के टुकड़े बब्बू के आगे डाल देता है। बब्बू बड़े चाव से उन्हें चबाता है, दो कटोरा पानी पीता है, भूख कुछ दब जाती है, बच्चा झोपड़ी के बाहर फिर खेलने लगता है।

अचानक कोई आवाज सुनाई पड़ती है, ददुवा झोपड़ी से बाहर निकल आता है, कान लगाकर सुनता है–"शुकुल दादा की जै-जै कार, शुकुल दादा की जै-जै कार।" आवाज धीरे-धीरे नजदीक होती गयी। ददुवा का मन लहरा उठा, दौड़ कर नीम के पेड़ के पास बने चबूतरे पर चढ़कर आवाज को पहचानने लगा, फिर वही आवाजें, अब ददुवा को जाहिर हो गया था यह मकरन्दी की आवाज है। फिर क्या था झटपट झोपड़ी में घुस गया, बाहों में झोली टांगी, एक हाथ में कटोरा और दूसरे में डण्डा लेकर निकल पड़ा। बब्बू अभी खेल ही रहा था, लपक कर उसका हाथ पकड़ा और चबूतरे पर जा बैठा। अब कुदुवों का झुण्ड साफ नजर आ रहा था। झुण्ड के आगे-आगे मकरन्दी लम्बे डग भरता चला आ रहा है। अभी ददुवा के नजदीक भी न आ पाया था कि दूर से चिल्लाने लगा, "ददुवा आजु सेमरी के लल्ला साहेब (शुकुल दादा) के हियां ब्रह्म भोजु हवै, आजु स्यारन शक्कर औ पूरी कटी।" ददुवा कुदुवों के सरगना थे। (कुदुवों का अभिप्राय उन लोगों से है जो बिना बुलाये हर एक ब्रह्मभोज में खाने पहुंच जाते हैं) अब शुकुल दादा की जै-जै कार लगाते हुए ददुवा झुण्ड को लेकर पगडण्डी के रास्ते से सेमरी की ओर चल पड़े। मुकाम पर पहुंच कर देखते हैं कि हजारों की भीड़ खाना खा चुकी है। दूसरी पंगत में हजारों लोग खाना खाने बैठे हैं और आने वालों का तांता अभी नहीं टूटा है। धीरे-धीरे शाम को खाना खत्म हुआ। अब कुदुवों के खाने की बारी थी। बैसवारा में ब्रह्मभोज तभी सफल माना जाता है जब कुदुवा खाकर जै-जै कार करें।

कुदुवों को खिलाने की व्यवस्था की जाने लगी, खाने का सारा सामान बाहर लाकर एक जगह इकट्ठा किया गया, शक्कर के दो नये बोरे खोले गये। परोसने वाले कमर में अंगौछा बांधकर तैयार हुये। कुदुवों की पंगत बैठा दी गई। खाना शुरू हुआ, शुकुल दादा की जै-जै कार से आसमान गूंज उठा। शक्कर-पूरी का ही झोंका चल रहा है। जितने परोसने वाले न थे उतने कुदुवों को ताकने वाले। कुदुवा जितना खाता है उसका चौगुना चुराता है। ददुवा अकेले 56 पूरी और पांच सेर शक्कर डकार गये और झोली में कितना छिपाया भगवान ही जाने। बब्बू कुदुवों की यह सब करामात देख रहा है। भोज खत्म हुआ, कुदुवों ने एक स्वर से शुकुल दादा की जै कार लगाई। शायद कुदुवों की यह आखिरी जै कार है यह समझ कर शुकुल दादा के जान में जान आई। खाना कम पड़ जाय या समय से पत्तलों पर शक्कर-पूरी न पहुंचे तो कुदुवा दंगई मचाता है, यजमान को बद्दुआ देता है।

रात हो गई थी। कुदुवों का झुण्ड अपने-अपने डेरों की ओर चला जा रहा है। सभी शक्कर-पूरी का बखान कर रहे हैं। खूब खिलाया-खूब खिलाया, एक ने कहा हमने तीन सेर शक्कर और 20-25 पूरी झोली में छिपा लीं, दूसरा तपाक से बोला तुमने क्या छिपाया मैने पांच सेर शक्कर और 30-40 पूरी झोली में रख ली। सभी प्रसन्न थे और अगला ब्रह्मभोज जहां हो उसकी खबर देने की बात एक दूसरे से कर रहे थे।

कुदुवों के झुण्ड के पीछे-पीछे बब्बू चला आ रहा है, उसे उन लोगों की बातों में कोई रूचि नहीं थी। ब्रह्मभोजों में बिना निमंत्रण के पहुंचना, पूरी-शक्कर चुराना, पकड़े जाने पर अपमानित होना, पंगत से उठा दिया जाना यह सब बातें उसे अच्छी न लगतीं। मजबूरी थी, बेचारा ब्रह्मभोजों में खाने न जाता तो करता ही क्या, घर में भी तो कुछ न था। परंतु उसके अन्दर कुदुओं की इस प्रथा का विरोध पनपता रहा। वह चाहता था कि

समाज में हमें भी स्थान मिले, हमें भी खाने-कमाने के अवसर सुलभ हों । लेकिन करता ही क्या, मन के भाव अन्दर ही अन्दर उफान लेते और शान्त हो जाते ।

रोज की तरह आज भी बब्बू अपनी झोपड़ी के सामने खेल रहा है, अचानक दो आगन्तुकों (राम औतार और सतपाल) ने बड़े विनम्र भाव से बालक को इशारे से अपनी ओर बुलाया और पूछा–"तुम्हार नाम क्या है ? बब्बू बब्बू तुम पढ़ने जाते हो ? नहीं, फिर क्या किया करते हो ? बब्बू लड़खड़ाती आवाज में बोला, "कुदुवन के साथ ब्रहमभोजु खाइत हैं ।" बालक के भोले पन पर राम औतार और सतपाल को तरस आ गया, दोनों ने एक दूसरे को देखा और फिर बालक से पूछा-स्कूल में पढ़ना चाहते हो ? बब्बू ठिठक सा गया ऐसा लगा कि उसकी परिस्थिति उसे कुछ सोचने को मजबूर कर रही हो । सतपाल फिर वही प्रश्न दोहराता है लेकिन बब्बू निरूत्तर, सिर झुकाये प्रस्तर प्रतिमा की भांति खड़ा रहा । दोनों आगन्तुक उसे पुचकारते हुये, अगर पढ़ने का मन करे तो चलो गांव के स्कूल में तुम्हारा नाम लिखा दूं । कुछ फीस-ऊस नहीं पड़ेगी, कापी, किताबें और दो-पहरी का जलपान भी स्कूल में मिलेगा । पढ़ने में अच्छे निकलोगे तो सरकार वजीफा भी देगी, यानी समझ लो कि ददुवा को तुम्हारी पढ़ाई में कुछ नहीं लगाना । यह सब सुनकर बब्बू का मन स्कूल जाने को लालायित हो उठा । वह बोला, भइया । "ददुवा से पूंछि लेव, हमार मनु पढ़िवे का बहुत है ।"

दूसरे दिन सवेरे ही राम औतार और सतपाल ददुवा के पास पहुंच गये । ददुवा पुरानी पूड़ियों के सूखे टुकड़े कटोरे के पानी में भिगो-भिगो कर बब्बू को दे रहा था, बगल में बैठा बब्बू उन्हें बड़े चाव से खा रहा है । पैरों की आहट पाकर ददुवा झोपड़ी से बाहर निकला, देखता है दो लोग झोपड़ी के सामने खड़े हैं । ददुवा उनसे राम-राम करता है और नीम के चबूतरे पर बैठने का संकेत करता है । तीनों लोग बैठ जाते हैं, बब्बू भी पास में खड़ा है । सतपाल ददुवा से बब्बू की पढ़ाई की बात करते हैं । ददुवा भड़क जाता है, कहता है–"भइया हमारी जमात मां पढ़ा-वढ़ा नहीं जात हम कुदुवा आपके घर के कउरा खाइके जीत है ।" सतपाल फिर समझाता है, किसी तरह से वह तैयार हो जाता है । दूसरे ही दिन बब्बू का नाम स्कूल में लिखवा दिया गया, बब्बू स्कूल जाने लगा । राम औतार और सतपाल बराबर उसकी पढ़ाई का ध्यान रखते । धीरे-धीरे उसका मन पढ़ने मे लगने लगा, अब वह घर पर भी पढ़ा करता । अनुकूल वातारण पाकर बब्बू की प्रतिभा में निखार आता गया । आज बब्बू आठवीं कक्षा में पढ़ रहा है, वह दिन-रात अपनी परीक्षा की तैयारी में जुटा है । परीक्षा सम्पन्न हुयी, कुछ समय के बाद परीक्षा परिणाम निकला । बब्बू प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर जिले में प्रथम स्थान प्राप्त करता है । सरकार से उसे वजीफा मिलने लगा । उसकी पढ़ाई आगे चलती रही । अब ददुवा उसे 'बबुआ' कहने लगा था । गांव में चारों तरफ बबुआ की प्रशंसा होने लगी । आज बबुआ विज्ञान विषय लेकर हाई स्कूल की परीक्षा में सम्मिलित हो रहा है । समय बदल गया जो लोग कभी बबुआ की तरफ देखते न थे आज उनके अपने बच्चे बबुआ के पास गणित समझने आते हैं । हाई स्कूल की परीक्षा का परिणाम आने वाला है । बबुआ को परिणाम की चिन्ता नहीं, वह तो अपनी झोपड़ी को संवारने मे व्यस्त है । परीक्षा परिणाम निकल गया बबुआ अपना रिजल्ट देखने स्कूल जाता है । मास्टर साहब से अपना रिजल्ट पूछता है । मास्टर साहब रिजल्ट देखकर अरे "तुम्हारा नाम तो इसमें है ही नहीं ।" बबुआ को आश्चर्य होता है, वह कहता है–नहीं गुरूजी ऐसा नहीं हो सकता, मैं फेल नहीं हो सकता, आप फिर से देखें ।" दुबारा देखने पर भी उसका नाम कहीं नजर नहीं आया । बबुआ फिर कहता है–गुरूजी ऐसा कैसे हो सकता है । मास्टर साहब झल्लाकर सारा रिजल्ट उसके सामने पटक देते हैं । बबुआ स्वयं अपना रिजल्ट देखता है पर नाम कहीं नजर नहीं आता, फिर देखता है इस बार उसकी नजर मेरिट लिस्ट की सूची पर टिक जाती है । बबुआ का नाम मेरिट में तीसरे स्थान पर है । मास्टर साहब अपने को कोसते हुये बबुआ को बार-बार बधाई देने लगते हैं ।

अच्छे परीक्षा परिणाम के लिए शिक्षा मंत्री का प्रशंसा पत्र उसे प्राप्त होता है । आज बबुआ की खुशी का ठिकाना नहीं । उसकी आंखों में आंसू आ गये, काश आज मेरी मां होती तो... उसकी पढ़ाई आगे चलती रही । बबुआ ने कृषि विज्ञान विषय लेकर क्रमश: इण्टर मीडिएट और स्नातक की परीक्षायें भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं । उसकी विषय के प्रति स्पष्ट समझ और प्रतिभा की दाद शिक्षक भी देते थे । आज बबुआ बी.एस.सी.ए.जी. की परीक्षा उत्तीर्ण करके गर्मी की छुट्टियां गांव में अपनी कदीमी झोपड़ी में बिता रहा है ।

जून का महीना, धूल के बवण्डर और लू के थपेड़े शरीर को झकझोर रहे हैं । चारों तरफ सन्नाटा छाया है परन्तु सच्चा, कर्मठ अध्यवसायी कार्यकर्त्ता इन सब की परवाह किये बैगर अपने कार्य में लगा रहता है । राम औतार और सतपाल दोपहरी के सन्नाटे में, बबुआ से मिलने आ धमके । वही पुराना नीम वाला चबूतरा बैठने का एक मात्र स्थान । बबुआ झट-पट कुए से ठंडा पानी भर लाता है, सभी लोग चुल्लु में पानी पीते हैं । बबुआ से मिलकर दोनों

लोग बड़े प्रसन्न हैं । अब बबुआ को ददुवा की चिन्ता थी । ददुवा पढ़े लिखे तो न थे लेकिन हुनर में उनका कोई जोड़ीदार न था । वह किसानी के औजार लोहारी बनाने में बड़े माहिर थे । रामऔतार ने सलाह दी कि वह लोहारी का काम शुरु करें । सारे साज-सामान की व्यवस्था करादी जायेगी । परन्तु ददुवा ऐसा करने को तैयार न थे क्योंकि उनकी कुदुवागीरी में खलल पड़ रहा था । बहुत समझान बुझाने के बाद ददुवा लोहारी का धंधा करने को राजी हो गये । धंधा चलने लगा । गांव के लोग तथा पास पड़ोस के सभी किसान ददुवा के पास अपने खेती के औजार ठीक कराने लगे । ददुवा की शौहरत चारों तरफ हो गई थी । लगभग रोज ही ददुवा के लोहार खाने में भीड़ लगी रहती । ददुवा की मेहनत का भुगतान कुछ किसान नगद रुप में करते और कुछ छमाही गल्ला देते थे । अब ददुआ की माली हालत काफी सुधर गई है । उसने अपना एक छोटा सा घर भी बना लिया है । उधर बबुआ अपनी नौकरी के लिये चिंतित है । उसने ब्लाक डेवलपमेण्ट आफिसर्स पद के लिये एक एप्लीकेशन भेजा था, उसका इण्टरव्यू होने वाला है । बबुआ अपने इण्टरव्यू की तैयारी कर रहा है । अपने वजीफा के पैसों से उसने अपने लिये एक सफेद जीन का पैण्ट और एक हाफ बुशर्ट सिलवाया है, उसके पास यह एक मात्र ड्रेस थी । इण्टरव्यू हुआ बबुआ अपने इण्टरव्यू से सन्तुष्ट था ।

जुलाई का महीना बीत रहा था, खेती किसानी का काम पूरे जोर पर था । ददुवा के लोहार खाने मे किसानों का मजमा लगा है । ददुवा सिर झुकाये औजार बनाने मे तल्लीन है । अचानक पोस्टमैन ददुवा को एक बड़ा लिफाफा पकड़ा कर चला जाता है । इसी बीच बबुआ खाना लेकर दुकान पर आता है, ददुवा उसे लिफाफा देता है । लिफाफे पर लिखा है, "भारत सरकार के सेवार्थ" बबुआ लिफाफा फाड़ डालता है, पत्र पढ़ता है–"आपकी नियुक्ति ब्लाक डेवलपमेंट आफिर्स के पद पर अस्थाई रुप से कर ली गई है, जिसके स्थाई होने की सम्भावना है । आपका ट्रेनिंग सेन्टर बक्शी का तालाब (लखनऊ) है । दस दिन के अन्दर उक्त केन्द्र पर पहुंच कर अपनी उपस्थिति की सूचना प्रेषित करें ।" बबुआ खुशी से झूम उठा, आज उसे अपने परिश्रम का फल मिल गया, लपक कर ददुवा के पैरों मे सिर रख दिया । ददुवा हमें ब्लाक डेवलपमेन्ट आफिसर की नौकरी मिल गई है । ददुवा अपने बेटे को छाती से लगाते ही फफक पडा, काश आज बबुआ की मां... । लोहार खाने पर किसानों का जमघट यह सब देखकर भौचक्का रह गया ददुवा उन लोगों को बता रहा है–"हमार बबुआ बाबू होइ गवा है, वहिका बिलाक डफलामेन्ट अपसरु के नौकरी मिलि गै है ।" सभी बबुआ को बधाई देने लगते हैं । शाम को ददुआ की चौपाल में भीड़ लगी है, इसी बीच रामऔतार और सतपाल आ जाते हैं, ददुवा उनके गले से लिपट कर, "हमार बबुआ बाबू होइ गवा है ।" दोनों बबुआ को बधाई देते हुये कहते हैं, ददुवा पढ़ाई-लिखाई कभी निष्फल नहीं जाती, बबुआ की सच्ची लगन और कर्त्तव्य निष्ठा का फल आज उसे मिल गया । एक सप्ताह के अन्दर बबुआ नौकरी पर चला जाता है । अब ददुवा घर पर अकेला है । इसलिये राम औतार और सतपाल रोज शाम को ददुवा के पास आ जाते हैं । शाम का समय तीनों चौपाल में बैठे हैं, आज ददुवा उदास है, उसके चेहरे पर रोज की तरह रौनक नहीं । सतपाल ददुवा से–ददुवा आज चेहरे पर उदासी क्यों ?

"आज बबुआ की याद आ गई है । वह कैसा होगा । खाने का इन्तजाम उसका कौन करता होगा ।"
अचानक आहट होती है और बबुआ तपाक से बोलता है, "मैं बहुत सुखी हूं । बाबा अब तुम बूढ़े हो गए हो–काम धंधा अब तुम छोड़ दो । मैं कमाने लग गया हूं । "ददुवा के आखों में खुशी के आंसू छलक जाते हैं–और लपक कर वह बबुआ को गले लगा लेता है । बबुआ राम औतार और सतपाल के चरण छूता है और कहता है, "आज जो कुछ मैं हूं आप दोनों के आशीर्वाद से हूं"

**नया सुजानपुरा-207,**
**आलमबाग, लखनऊ-5**

# भूमि सुधार सभी के हित में

हीरा वल्लभ शर्मा

भारत में कृषि-क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण अंग है । यदि कहा जाये कि यहां की सारी अर्थव्यवस्था कृषि के आधार पर टिकी है, तो अतिश्योक्ति न होगी । चाहे वह राष्ट्रीय आय हो, उद्योग-धंधे हों, विदेशी व्यापार हो या सरकारी बजट सभी कृषि से गहरे तौर पर प्रभावित होते हैं । लेकिन फिर भी भारत का कृषि-क्षेत्र विकास के नजरिये से काफी पिछड़ा हुआ है । इसके पीछे अनेक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी और प्राकृतिक कारण हैं । कृषि उत्पादन मुख्यतया दो तत्वों पर निर्भर करता है–तकनीकी कारक और संस्थागत कारक । तकनीकी कारकों में बढ़िया बीज, उर्वरक, उन्नत हल, ट्रैक्टर, सिंचाई आदि कृषि आदान और विधियां शामिल हैं, जिनके उपयोग से कृषि का स्तर उन्नत करने में सहायता मिलती है चाहे भू-सुधार न हुए हों । जब कि संस्थागत सुधारों में भू-स्वामित्व का कृषकों के हित में पुनर्वितरण, खेतों के आकार में सुधार, भूधृति की सुरक्षा, लगान का विनियमन आदि सम्मिलित हैं । दूसरे शब्दों में, खेतों का छोटा आकार, भू-धारण अधिकारों की असुरक्षा, खेतों का उपविभाजन, ऊंचा लगान इत्यादि कुछ ऐसे कारक हैं जो किसानों को आगे बढ़ने में हतोत्साहित करते हैं । भारत में कृषि-क्षेत्र के पिछड़े होने में यहां की दोषयुक्त भू-धारण प्रणाली का बड़ा हाथ है ।

## भू-धारण प्रणाली

खेती से किसान का संबंध दो तरह का होता है । एक उत्पादक के रुप में वह भूमि पर स्वयं काम करता है और दूसरे इस काम-धंधे में रोजगार पाकर वह आय कमाता है । इन संबंधों को मोटे तौर पर भू-धारण प्रणाली निर्धारित करती है । भू-धारण प्रणाली का अर्थ है वह व्यवस्था जिसमें भूमि का स्वामित्व तथा भूमि के प्रति अधिकार और दायित्व निर्धारित होते हैं । इस प्रकार भू-प्रणाली से इस बात की जानकारी होती है कि भूमि का मालिक कौन है और किसान का मालिक से क्या संबंध है । जाहिर है, मालिक के नाते किसान अपनी आय बढ़ाने के लिए कड़ी मेहनत करेगा । चूंकि भूमि में किये गये निवेश का फल उसे ही मिलेगा, अतः भूमि में निवेश लगाने और सुधार लाने के लिए वह बराबर तत्पर रहेगा । इसी को ध्यान में रखते हुए सरकार ने भूमि-सुधार की तरफ कदम उठाये हैं ।

## भूमि सुधार

भूमि सुधार का आशय भूमि के साथ किसानों के संबंध में संस्थागत परिवर्तन लाये जाने से है । यानी, भूमि सुधार के अतर्गत ऐसे संस्थागत परिवर्तन किये जाते हैं जिनसे भूमि-साधनों का वितरण खेतिहरों के पक्ष में होता है, और आकार बढ़ने से कृषि इकाई अथवा खेत आर्थिक दृष्टि से सक्षम बन जाते हैं । भारत के संदर्भ में भूमि सुधार में उपरोक्त पहलुओं का समावेश करना आवश्यक है । क्योंकि दोनों के संबंधों में देश की स्थिति ठीक नहीं है । अधिकांश कृषि भूमि थोड़े से व्यक्तियों के पास है । प्रायः ये स्वयं खेती न करके अपनी जमीन कड़ी शर्तों पर किसानों को देते हैं । कभी-कभी बड़े काश्तकार उप-काश्तकारों को जमीन उठा देते हैं । जिससे सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाती है । इसे नियंत्रित करने के लिए भारत के परिवेश में भूमि सुधारों की अपनी महत्ता है । भूमि-सुधारों का पहला लक्ष्य सामाजिक न्याय

को ध्यान में रखते हुए स्वामित्व जोतों का पुनर्वितरण और उसके बाद संकार्य जोतों का पुनर्गठन करना है । इसके अतिरिक्त भूमि-सुधार का उद्देश्य भू-धारण अधिकार की सुरक्षा करना, लगान नियत करना और स्वामित्व का अधिकार प्रदान करना भी है । भूमि-सुधारों के जरिये देश में एक ऐसा वातावरण तैयार करना जरुरी हो गया है जिसमें कृषकों को अपने श्रम का पूरा फल मिले ।

### स्वामित्व का अधिकार

यदि भूमि सुधार संबंधी कार्यक्रमों को सही मानी में अमल में लाना है, यह सुनिश्चित करना है कि खेती करने वाले को अपनी मेहनत और निवेश का पूरा-पूरा फल मिले, तो खेती करने वाले को भूमिधर बनाना होगा, उसे स्वामित्व का अधिकार देना होगा । उन जमीनों पर, जिन्हें भूमि-स्वामी फिर से प्राप्त नहीं कर सकते, काश्तकारों को भूमिधारी बनने के लिए सुविधाएं देनी होंगी । दूसरी योजना में यह उचित समझा गया कि भू-स्वामियों द्वारा भूमि पुन: प्राप्त न किये जा सकने वाले क्षेत्रों में काश्तकारों और राज्यों के बीच सीधा संबंध स्थापित किया जाये । शुरु में काश्तकार का भूमि खरीदने संबंधी अधिकार वैकल्पिक था किंतु यह असरदार साबित न हो पाया । तत्पश्चात क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं में इस दिशा में कई कानूनी उपाय किये गये । जिन राज्यों ने अपने काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार प्रदान नहीं कर रखे थे, उनसे विशिष्ट अवधियों के भीतर कानूनी उपाय करने को कहा गया । उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल में काश्तकार और उप-काश्तकार को भूमि का पूर्ण स्वामित्व प्रदान करके राज्य से सीधे संबंधित करने के प्रयास किये गये, और अब भी ऐसे ही प्रयास किये जा रहे हैं । पंजाब में काश्तकार का भूमि खरीदने का अधिकार वैकल्पिक है । गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और केन्द्र शासित प्रदेशों में स्वामित्व का अधिकार प्रदान करने संबंधी कानून बनाये जा चुके हैं, मगर अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ किया जाना बाकी है । पश्चिम बंगाल के विषय में स्थिति थोड़ी सी भिन्न है । यद्यपि यहां का कानून बटाईदार को भू-स्वामित्व का अधिकार नहीं देता, किन्तु भू-धारण की सुरक्षा देता है और साथ में उसके अधिकारों का रिकार्ड रखता है ।

### भू-धारण की सुरक्षा

सर अर्थर यंग ने कहा है : "किसी व्यक्ति को उजाड़ भूमि का सुरक्षित स्वामित्व प्रदान कर दिया जाये, तो वह उसे हरे-भरे बाग में बदल देगा, और यदि उसे हरा-भरा बाग कुछ समय के लिए पट्टे पर दे दिया जाए, तो वह उसे मरुभूमि बना देगा ।" जो काफी हद तक उचित जान पड़ता है । भू-धारण का अधिकार अस्थायी होने पर किसान व्यक्तिगत रुप से भूमि में बहुत कम रुचि लेता है, और भूमि की साज-संभाल में बहुत कम ध्यान देता है । भू-धारण का अधिकार छिन जाने से भूमि सुधारने, बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने, मिट्टी को उपजाऊ बनाये रखने के लिए दीर्घकालीन योजनाएं तैयार करने के प्रति उसका सारा उत्साह समाप्त हो जाता है । अत: सामाजिक न्याय दिलाने और अधिक से अधिक उत्पादन करने की दृष्टि से भू-धारण की सुरक्षा हेतु कानूनी उपाय आवश्यक हो जाते हैं ।

इस संबंध में गठित अध्ययन दल ने ऊपर वर्णित वैकल्पिक उपायों के पक्ष-विपक्ष में ध्यानपूर्वक विचार किया है । उसे लगता है कि लगानदारों और बटाईदारों को स्वामित्व के अधिकार तुरंत प्रदान करने के लिए काफी पहले से स्वीकृत नीति को अपनाना सुविधाजनक है । यद्यपि, इस संबंध में चूक करने वाले राज्यों को सलाह दी जाती है कि स्वामित्व के अधिकारों को बाद की किसी तारीख तक के लिए स्थगित करते हुए वे पहले लगानदारों और बटाईदारों के अधिकारों को अभिलेखबद्ध करें । परंतु, जहां तक भूस्वामियों की बात है वे इस नीति को वास्तविक परिवर्तन के तौर पर नही मानते । अत: होता यह है कि लगानदारों और बंटाईदारों के अधिकारों का रिकार्ड करने के प्रति उनका विरोध कम नहीं होता ।

### भूधृति का पूर्ण निषेध—क्या यह व्यवहार्य है ?

भूधृति (लगानदारी) के पूर्ण निषेध के औचित्य पर हाल के कुछ वर्षों से बहस चल रही है । कुछ लोग ऐसे हैं जो लगानदारी के पूर्ण निषेध को सामाजिक सच्चाई के खिलाफ मानते हैं । भारत के गांवों में प्रचलित प्रथाओं, परम्पराओं और सामाजिक रीति-रिवाजों को देखते हुए असंभव नहीं तो यह कह पाना मुश्किल जरुर है कि प्रत्येक भूमिधर अपनी भूमि पर स्वयं खेती करेगा । इसी प्रकार, यदि वैयक्तिक खेती, **भूमिधर बनने के लिए अनिवार्य शर्त बना दी जाती है, तो** कृषि-क्षेत्र से बाहर रोजगार के अवसर तलाशने में उसे रुकावट आ सकती है । हालांकि संगठित औद्योगिक और तीसरे क्षेत्र में रोजगार के इतने अवसर मौजूद नहीं हैं कि खेती के आधार पर जीवनयापन करने वाले विशाल अधिशेष जन समूह को यहां कोई और काम-धंधे मिल सकें । परंतु, छोटे भूमिधरों, विशेषत:

सीमांत किसानों के लिए कृषि क्षेत्र से बाहर किंतु, अपने ही गांव में या निकट शहरी या अर्ध-शहरी इलाकों में खेती के अतिरिक्त स्वरोजगार के अन्य अवसर तलाशना तो संभव है ही बशर्ते ऐसा करने पर उन्हें अपनी भूमि से हाथ न धोना पड़े । देश के सभी भागों में ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आर डी पी) और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एनआरईपी) का विस्तार करने से रोजगार के अवसर बढ़े तो हैं मगर ये हर दृष्टि से नाकाफी हैं ।

कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि प्रच्छन्न (चोरी-छिपे की जाने वाली) लगानदारी सीधे लगानदारी के पूर्ण निषेध का ही परिणाम है । यहां तक कि गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में, जहां लगानदारी को समाप्त करने के उपाय 30 वर्ष से अधिक अवधि से किये जा रहे हैं, प्रच्छन्न लगानदारी अब भी काफी मात्रा में छाई हुई है । अनेक राज्यों में, जहां लगानदारी प्रथा अनौपचारिक रुप से समाप्त कर दी गई है, व्यापक रुप से फैली प्रच्छन्न लगानदारी भूमि संबंधी रिकार्डों को काल्पनिक बना देती है । कारण, इन रिकार्डों में लगानदार की खेती-योग्य इस भूमि के बार में कुछ भी दर्ज नहीं हो पाता ।

ऊपर वर्णित तथ्य में कुछ हद तक दम होने के बावजूद इस संबंध में यह सावधानी अवश्य बरती जानी चाहिए कि भूमि सुधार की इस अवस्था में लगानदारी को यदि कानूनी तौर पर फिर से बढ़ावा दिया गया तो इससे फायदा कम और नुकसान अधिक होगा । जमींदारों को इसके सहारे बहाना मिल जायेगा और वे स्वेच्छा से इस व्यवस्था का इस्तेमाल छोटे और सीमांत किसानों को बहला-फुसलाकर या जोर-जबरदस्ती करके उनकी जमीन पट्टे पर हथिया लेने के लिए करेंगे और बाद में उस जमीन पर हक स्थापित करना ऐसे पट्टादाता किसानों के लिए मुश्किल हो जायेगा ।

## दूरवासी जमींदारी-विकास में एक बाधा

इस संदर्भ में खेती योग्य भूमि रखने के लिए वैयक्तिक खेती को आधार बनाने की वांछनीयता पर फिर से विचार किया जा रहा है ।

वैयक्तिक खेती की परिभाषा निम्नलिखित कारकों पर जोर देती है : (1) किसी भूमि पर खेती का दावा करने वाला व्यक्ति खेती का संपूर्ण जोखिम स्वयं वहन करे; (2) यदि वह वैयक्तिक श्रम का योगदान नहीं करता, तो जरुरी है कि खेती की देखभाल स्वयं करे ।

वैयक्तिक श्रम से तात्पर्य है भूमि का स्वामी अपनी भूमि पर स्वयं कार्य करे । इस अर्थ में वैयक्तिक श्रम का योगदान अभी तक एच्छिक बना हुआ है । भू-स्वामी स्वयं खेती करे या न करे यह उसी की इच्छा पर निर्भर है । भूमिधारी या उसके परिवार के किसी सदस्य द्वारा की गई खेती की देखभाल को वैयक्तिक श्रम ही माना जाता है । इससे होता यह है कि अन्यत्रवासी जमींदार भूमि पर अपना कब्जा बनाये रखते हैं और सही में मेहनत करने वाला शोषण का शिकार होता है और बेदखली का रोग बना रहता है । क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं में सुझाई गई निवास संबंधी शर्त—जिन पर अनेक राज्यों ने कानून भी बनाये हैं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मात्र औपचारिकता ही जान पड़ती है । ग्रामीण समाज की आज की परिस्थितियों को देखते हुए यही लगता है कि वैयक्तिक श्रम के योगदान का आग्रह अब भी निरर्थक ही रहेगा । ऐसा कोई कारण नहीं है कि वैयक्तिक रुप से खेती (खुदकाश्त) करने का दावा करने वाले भूमिधर के लिए अपनी भूमि की विशिष्ट सीमा में ही निवास करने पर जोर देने में राज्य सरकारों को किसी प्रकार की हिचक हो । पांचवीं पंचवर्षीय योजना में यह सीमा 8 किलोमीटर निर्धारित की गई थी, जो काफी हद तक उचित है । सातवीं पंचवर्षीय योजना में भी सभी राज्यों से तदनुसार कानून बनाने का आग्रह करना चाहिए ।

अक्सर होता यह है कि कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाला अधिशेष, लगान के रुप में, ऐसे लोगों के पास पहुंच जाता है जो निवेश के लिए इस्तेमाल होने के बजाय प्रदर्शनकारी उपभोग में लग जाता है । ऐसे लोगों की उपस्थिति से गांव वालों में कृषिकार्य के प्रति कोई उत्साह नहीं रहता, बल्कि इससे असंतोष को बढ़ावा मिलता है । इसके फलस्वरुप कृषि वातावरण पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । अतः राज्य सरकारों को चाहिए कि वे ऐसे कानूनी उपाय करें जिनसे दूरवासी जमींदारी प्रथा पर रोक लगे । भूमिधर से कृषि-सीज़न के अधिकांश समय में विशिष्ट सीमा के अंदर निवास की अपेक्षा करने वाले कानूनी प्रावधान दूरवासी जमींदारों का पता लगाने के लिए मापदंड का काम करेंगे, बशर्ते प्रशासन इस संबंध में काफी सतर्क रहे । दूरवासी जमींदारी को समाप्त करने का यह एक असरदार जरिया हो सकता है ।

## गैर-कृषकों को भूमि का अंतरण नहीं

कृषि अर्थव्यवस्था में विभिन्न भू-धारण प्रणालियों के अंतर्गत गैर-कृषकों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है । कृषि-क्षेत्र में चूंकि सरकार का ध्यान ख़ास तौर पर केवल माल-गुजारी वसूल करने तक ही सीमित था, अतः भू-स्वामियों पर ऐसा कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया जिससे कि वे गैर-कृषकों को भूमि न बेच पाते ।

इसमें से दूरवासी जमींदार वर्ग का उदय हुआ । ये स्वयं खेती नहीं करते, अपितु ठेके पर जमीन उठा देते हैं । कुछ तो जमीन को खाली रख देते हैं । सभी राज्यों द्वारा इस प्रकार के तात्कालिक प्रावधान बनाये जाने के रास्ते में कोई दुर्लंघ्य कठिनाई नहीं आनी चाहिए कि अब के बाद गैर-कृषकों को कृषि-योग्य भूमि के अंतरण की अनुमति नहीं दी जायेगी । कुछ राज्य इस दिशा में पहले ही कदम उठा चुके हैं और अन्य राज्यों को भी उनका अनुसरण करना चाहिए ।

**अनौपचारिक और प्रच्छन्न लगानदारी**

जिन राज्यों में लगानदारी कानूनी तौर पर समाप्त कर दी गई है, वहां के अनेक स्थानीय इलाकों में अनौपचारिक लगानदारी की घटनाएं अधिक संख्या में हो रही हैं । इस प्रकार के प्रच्छन्न या अनौपचारिक लगानदारों का पता लगाने और महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश तथा गुजरात की भांति अनौपचारिक लगानदारों को, जहां वे भूमि के आवंटन के लिए अर्हता रखते हैं, स्वामित्व के अधिकार प्रदान करने की कोशिश की जानी चाहिए । परंतु, यहां इस बात का ध्यान रखने की जरुरत है कि अनौपचारिक लगानदार ऐसे व्यक्ति न हों जो रिश्तेदारों, मित्रों और पिट्ठुओं के बीच भूमि को अपने कब्जे में बनाये रखने के लिए चालाक और काइयां जमींदारों द्वारा वहां जमाये गये हों भूमि पर प्रच्छन्न रुप से यानी चोरी-छिपे किये गये क़ब्जे का पता लगाने में जिला और ग्राम स्तरीय सरकारी तंत्र काफी मदद कर सकता है । गुजरात राज्य ने कुछ वर्ष पहले इस उद्देश्य से अपने कुछ चुनींदा जिलों में एक अभियान चलाया; फलस्वरुप, हजारों की संख्या में प्रच्छन्न लगानदार प्रकाश में आये । सरकारी तंत्र में यदि इच्छा शक्ति हो और संकल्प हो तथा स्थानीय लोगों, पंचायतों और स्वयं सेवी संगठनों का सहयोग प्राप्त हो, तो पता आसानी से लगाया जा सकता है और साथ ही, राज्य सरकार द्वारा असली जरुरतमंद को वितरित करने के लिए बचाकर रखी गई भूमि को गलत ढंग से हथियाने की प्रवृत्ति रोकी जा सकती है ।

**संस्थाओं द्वारा कब्जे में की गई भूमि**

यह देखने में आया है कि कुछ राज्यों में कई संस्थाओं ने बहुत सारी भूमि अपने कब्जे में कर रखी है । यद्यपि इन संस्थाओं में आय के उचित स्रोत होने चाहिए, उनके पास जमीन भी होनी चाहिए, किंतु न तो यह वांछनीय है और न ही आवश्यक कि ये संस्थाएं खेती योग्य विशाल भूमि को अपने कब्जे में बनाये रखें । इस तरह की भूमि में से उनका कब्जा हटाया जाना चाहिए । ऐसी संस्थाओं की भूमि छिनने से हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए उन्हें आय के वैकल्पिक स्रोत जैसे वार्षिक अनुदान मुहैया करने पर विचार किया जा सकता है ।

समय-समय पर भूमि-सुधार नीति को अमल में लाने, उसे कार्यान्वित करने की दिशा में सशक्त कदम उठाये जाते हैं क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं में भी इसे यथोचित महत्व दिया जाता है और अब भी दिया जा रहा है । भूमि सुधार के क्षेत्र में हुई प्रगति का मूल्यांकन करने भूमि सुधार के कानूनों और उनके कार्यान्वयन में कमियों व कमजोरियों का पता लगाने में सरकार निरंतर प्रयासरत है । इसलिये हर स्तर पर यह जरुरी भी है, क्योंकि भूमि सुधार की नीति सभी का सहयोग प्राप्त किये बिना असरदार ढंग से लागू नहीं की जा सकती । यह एक ऐसा आधारभूत परिवर्तन है जिससे एक ओर थोड़े से समृद्ध जमींदारों को धक्का पहुंचता है और दूसरी ओर वर्षों से दबे, बेबस, शोषण के शिकार और साधनहीन किसानों तथा खेतिहर मजदूरों को लाभ होता है । इस प्रकार भूमि-सुधार मुख्य तौर पर इन दो वर्गों के संघर्ष का एक रुप है । इसे शांतिपूर्ण ढंग से तभी हल किया जा सकता है जबकि इस नीति को सभी वर्गों द्वारा सभी पहलुओं पर समर्थन प्राप्त हो । □

**क्वार्टर नं. 287, सैक्टर 6,**
**राम कृष्ण पुरम**
**नई दिल्ली- 110022**

# भारत में ग्रामीण गरीबी कम करने के लिए भूमि सुधार की सम्भावना

कामता प्रसाद

**फालतू घोषित भूमि देश की कुल कृषि योग्य भूमि का लगभग 1.8 प्रतिशत है परन्तु वास्तव में 1.1 प्रतिशत भूमि ही वितरित की गई.......फालतू घोषित भूमि तथा भूमिहीनों को वितरित की गई जमीन प्रायः अच्छी किस्म की नहीं होती । इसके अलावा जिन लोगों को यह जमीन आबंटित की जाती है, वे इतने गरीब होते हैं कि पूरक निवेशों के लिए वे धन नहीं लगा सकते और ऋण प्राप्त करने में उन्हें बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है ।**

किसी भी व्यक्ति की आय सम्पति के स्वामित्व और रोजगार से प्राप्त होती है । ग्रामीण गरीब लोगों की निम्न आय क्यों है, इसका बुनियादी कारण यह है कि उनके पास कृषि योग्य भूमि बहुत कम है या बिल्कुल नहीं है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन का यही सबसे प्रमुख माध्यम है । इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब लोगों को जमीन का प्रावधान करना उनके जीवन स्तर को उठाने का एकमात्र और सबसे कारगर जरिया है । इसके अलावा, इस प्रकार की नीति का रोजगार की स्थिति पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा क्योंकि "छोटे जोतों में बड़े जोतों की तुलना में क्रमबद्ध तरीके से प्रति हैक्टेयर और ज्यादा श्रमिक काम पर लग सकते हैं ।" अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यदि जोतों की उच्चतम सीमा से सम्बंधित भूमि सुधारों पर अमल करने के कार्य को तेज कर दिया जाए तो गरीबी को हटाना कहीं ज्यादा आसान हो जाएगा । हमारा पिछला अनुभव क्या रहा है और हमें इससे क्या सबक मिलता है ? और इनके संदर्भ में भविष्य के लिए क्या सम्भावनाएं हैं ? ये कुछ सवाल हैं जिन पर इस लेख में हम विचार करेंगे ।

## भूमि पुनर्वितरण कार्य में धीमी प्रगति

पांचवें दशक के अंत में तथा छठे दशक के प्रारम्भ में भूमि की उच्चतम सीमा लागू करने के लिए जो उपाय किए गए उससे "सीलिंग" के बाद बचत के रुप में प्राप्त 8.46 लाख हैक्टेयर जमीन 16.45 लाख ग्रामीण भूमिहीन परिवारों में बांटी गई । परन्तु इन कानूनों के अंतर्गत भूमि की जो उच्चतम सीमा (सीलिंग) लागू की गई थी, वह बहुत ऊंची थी और इसमें अनेक छूटों का भी प्रावधान था । इसलिए जुलाई 1972 में भूमि की उच्चतम सीमा की नई राष्ट्रीय नीति बनाई गई जिसमें इन खामियों को दूर कर दिया गया और विभिन्न राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में कानूनों में काफी हद तक एकरुपता लाने का सुझाव दिया गया । इसके अनुरुप देश भर में कानून बनाए गए और उन पर अमल किया गया । संशोधन-पूर्व तथा सीलिंग कानूनों के संशोधन के बाद 19 फरवरी 1986 तक कुल 29.40 लाख हैक्टेयर बचत की भूमि प्राप्त हुई । इसमें से 23.19 लाख हैक्टेयर का राज्यों द्वारा अधिग्रहण किया गया । इसमें से 17.52 लाख हैक्टेयर जमीन 33.76 लाख व्यक्तियों को वितरित की गई है जिनमें से 54.7 प्रतिशत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के हैं ।

किसी भी स्तर से देखा जाए तो ऊपर वर्णित सफलता बहुत कम है । बचत घोषित क्षेत्र देश की कुल कृषि योग्य भूमि का लगभग 1.8 प्रतिशत है परन्तु वास्तव में 1.1 प्रतिशत भूमि ही वितरित की गई । 1981 के आंकड़ों के अनुसार खेतिहर श्रमिकों के केवल 6 प्रतिशत को ही लाभ पहुंचा । इस प्रकार समस्या के केवल किनारे को ही स्पर्श किया जा सका । लाभ प्राप्त करने वालों तथा वितरित क्षेत्र के बारे में आंकड़ों से पता चलता है कि इस योजना के अंतर्गत लाभ पाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को 0.52 हैक्टेयर जमीन उपलब्ध हुई जिसका क्षेत्रफल थोड़ा है और इससे

इतना अधिक उत्पादन नहीं हो सकता कि उसे गरीबी की रेखा से ऊपर उठाया जा सके ।

बचत घोषित भूमि तथा भूमिहीनों को वितरित की गई जमीन प्राय: अच्छी किस्म की नहीं होती । इसके अलावा जिन लोगों को यह जमीन आवंटित की जाती है, वे इतने गरीब होते हैं कि पूरक निवेशों के लिए वे धन नहीं लगा सकते । और, ऋण प्राप्त करने में उन्हें बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है । सीलिंग से प्राप्त भूमि जिन लोगों को आवंटित की गई, उन लोगों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए एक केन्द्रीय योजना 1975-76 से शुरु की गई । परन्तु इस योजना के अंतर्गत इतनी मामूली धनराशि दी गई जिसका कोई विशेष प्रभाव पड़ने वाला नहीं था । केन्द्रीय कृषि तथा सिंचाई मंत्रालय द्वारा भूमि सुधारों के बारे में गठित एक कार्यदल ने कई वर्ष पहले बताया, "आबंटित भूमि की उत्पादक क्षमता का विकास करने के लिए आवश्यक निवेश केन्द्रीय योजना के अंतर्गत उपलब्ध सहायता से कहीं ज्यादा होगा । भूमि सुधार की लागत 700 रुपये प्रति हैक्टेयर से कम नहीं होगी जबकि केन्द्रीय योजना के अंतर्गत केवल 200 रुपये प्रति एकड़ की ही सहायता उपलब्ध है । यह धनराशि बाद में बढ़ाकर 400 रुपये प्रति एकड़ तथा उसके बाद 1000 रुपये प्रति एकड़ कर दी गई । इस वृद्धि का कुछ हिस्सा तो बढ़ती हुई कीमतों को भेंट चढ़ गया । वास्तविक वृद्धि बहुत मामूली हुई । **इसके अलावा, इस मामूली सहायता राशि में से भी** आंबटियों को बहुत थोड़ी सहायता दी जा सकी । इस प्रकार भूमि के पुनर्वितरण का कार्य अच्छा नहीं रहा और कमजोर वर्गों के लोगों पर इसका प्रभाव और भी मामूली रहा ।

## भूमि हस्तांतरण के लिए सीमित सम्भावना

फिर भी अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ– दोनों ही गरीबी दूर करने के लिए भूमि सुधारों को प्रमुख माध्यम के रुप में इस्तेमाल करने पर जोर देते हैं । उनके द्वारा निहित स्वीकृति यह हो सकती है कि पहले से स्वीकृत नीतियों पर अमल करने के लिए पर्याप्त राजनीतिक इच्छा हो तो काफी जमीन उपलब्ध कराई जा सकती है । जैसा कि पहले देखा जा चुका है कि फालतू घोषित 29.40 लाख हैक्टेयर जमीन में से केवल 17.52 लाख हैक्टेयर भूमि का **वितरण किया जा सका है; इस प्रकार 11.88 लाख हैक्टेयर** भूमि का वितरण नहीं किया जा सका । इसमें से 6.87 लाख हैक्टेयर भूमि मुकदमेबाजी में उलझी पड़ी है और 3.01 लाख हैक्टेयर जमीन या तो खेती करने के उपयुक्त नहीं है या सामाजिक वानिकी जैसे सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए आरक्षित होने की खबर है । यह भी बताया गया है कि अनेक कारणों से 1.28 लाख हैक्टेयर जमीन आबंटन के लिए उपलब्ध नहीं है । इस प्रकार 19 फरवरी 1986 को केवल 0.72 लाख हैक्टेयर भूमि वितरण के लिए उपलब्ध होने की खबर है । प्रति परिवार आधे हैक्टेयर भूमि उपलब्ध होने के आधार पर केवल 1.44 लाख परिवारों को लाभ पहुंच सकता है । मुकदमेबाजी में फंसी सारी जमीन के उपलब्ध हो जाने पर अधिक से अधिक 13.74 लाख और परिवारों को जमीन का हस्तांतरण किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, इस उपाय के जरिए अधिकतम 15.18 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाने की गुंजाइश है ।

**अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ— दोनों ही गरीबी दूर करने के लिए भूमि सुधारों को प्रमुख माध्यम के रुप में इस्तेमाल करने पर जोर देते हैं । उनके द्वारा निहित स्वीकृति यह हो सकती है कि पहले से स्वीकृत नीतियों पर अमल करने के लिए पर्याप्त राजनीतिक इच्छा हो तो काफी जमीन उपलब्ध कराई जा सकती है ।**

यदि भूमि के पुनर्वितरण को गरीबी दूर करने का प्रमुख माध्यम मान लिया जाए तो प्रत्येक परिवार को आबंटित की जाने वाली जमीन की मात्रा उपरोक्त स्तर से अधिक होनी चाहिए ताकि वह गरीबी रेखा से ऊपर पहुंच सके । यह स्तर भूमि की उत्पादकता तथा सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता के आधार पर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न-भिन्न हो सकता है । सिंचाई वाले क्षेत्र में 2 एकड़ जमीन भी परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त हो सकती है जबकि असिंचित क्षेत्रों में जमीन के अधिक बड़े टुकड़े की आवश्यकता होगी । एक अनुमान के अनुसार असिंचित क्षेत्र में यह क्षेत्रफल 2 हैक्टेयर (5 एकड़) है । ऐसी स्थिति में उच्चतम सीमा लागू करके फालतू जमीन हस्तातंरण करके गरीबी रेखा से ऊपर लाने के लिए जिनकी मदद की जानी है, ऐसे लोगों की संख्या और भी अधिक हो जाएगी । दूसरे शब्दों में वर्तमान सीलिंग कानून लागू करने के बाद जो जमीन उपलब्ध होगी, वह सभी लोगों या अधिकतर गरीब लोगों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाने के लिए पर्याप्त नहीं होगी । इसलिए गांवों के गरीब लोगों को भूमि का हस्तांतरण करना समाधान के ढांचे में अनेक तत्वों में से एक तत्व

माना जा सकता है, एकमात्र तत्व नहीं ।

सिंचाई की सुविधा के धीरे-धीरे विस्तार के साथ फालतू भूमि और बढ़ने की आशा है क्योंकि भूमि नियमन सीमा सिंचित भूमि क्षेत्र में असिंचित भूमि क्षेत्र की तुलना में कम है । लेकिन, प्रति वर्ष 2.1 प्रतिशत सिंचाई की वृद्धि-दर जनसंख्या की वृद्धि दर की तुलना में अधिक नहीं । जनसंख्या में वृद्धि के कारण देश में जोतों का आकार छोटा होता जा रहा है । बड़े जोतों की संख्या और उनके कुल संचालन क्षेत्र में कमी आई है । दूसरी ओर सीमांत, लघु तथा अर्द्ध-मध्यम और मध्यम किसानों की संख्या तथा उनके द्वारा जोते गए क्षेत्रों की संख्या बढ़ी है । इन तथ्यों पर विचार करने से पता चलता है कि सीलिंग कानूनों को लागू करने के जरिए भूमि के हस्तांतरण के मामले में सम्भावना में धीरे-धीरे कमी आई है ।

## भविष्य की नीति

वर्तमान भूमि नियमन कानूनों के अन्तर्गत घोषित फालतू भूमि से संबंधित आंकड़ों के बारे में प्राय: संदेह व्यक्त किए जाते हैं । कृषि आंकड़ों या राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण पर आधारित फालतू भूमि के अनुमानों के आंकड़े घोषित फालतू भूमि के आंकड़ों से काफी अधिक हैं । उदाहरण के लिए प्रारुप पंचवर्षीय योजना 1978-83 में दिए एक बयान को लें । राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 26 वें राऊंड 1971-72) के अनुसार 12 हैक्टेयर या उससे अधिक जोतों वाला अधिकृत क्षेत्र 231.2 लाख हैक्टेयर था । फालतू भूमि के मालिकों द्वारा अपने खेत की जुताई खुद करने की अनुमति देने पर संभावित फालतू भूमि 86 लाख हैक्टेयर होगी । इसी प्रकार 20 हैक्टेयर या उससे अधिक स्वामित्व वाले जोतों का क्षेत्रफल 103.5 लाख हैक्टेयर था और खुद काश्त वाली जमीन को इसमें घटा लेने पर संभावित फालतु भूमि 33.5 लाख हैक्टेयर हो जाएगी ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि के अभिलेखों को अद्यतन बनाने के लिए सातवीं योजना के दौरान प्रायोजित एक योजना पर अमल करने का प्रस्ताव है; इस योजना के लिए केन्द्र और राज्य बराबर-बराबर धनराशि देंगे । सबसे निचले स्तर तथा निगरानी स्तरों पर राजस्व तंत्र को चुस्त और मजबूत बनाने के लिए भी राज्यों को सहायता दी जाएंगी । राजस्व विभाग में काम करने वाले तथा बंदोबस्त कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाए जाएंगे ताकि उनकी कुशलता में सुधार आए और साथ ही उनके रवैये में भी परिवर्तन आए ।

यदि सरकार को ग्रामीण लोगों का पूरा-पूरा सहयोग मिले तो जमीन के दस्तावेजों में अशुद्धियों का पता लगाने सहित भूमि नियमन उपायों पर अमल करने का काम अपेक्षाकृत सरल हो जाएगा । इस उद्देश्य के लिए किसानों के मध्यम वर्ग को यह आश्वासन देना आवश्यक होगा कि उनके हितों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा । ग्रामीण समुदाय में किसानों का मध्यम वर्ग सबसे प्रमुख भाग है । इसका तात्पर्य यह है कि अधिकारियों को शुरु में बहुत बड़े भूमिधारियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा जिनसे फालतु भूमि का अधिकाश अनुपात प्राप्त होता है । एक अन्य विचारणीय सुझाव यह है कि जमीन के सामान्य लेन-देन के अंतर्गत भूमि प्राप्त करने के लिए गरीबों को पर्याप्त धन उपलब्ध कराया जाये । इसे समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत बैंक से धन प्राप्त करने योग्य योजना में शामिल किया जा सकता है ।

अभी तक भूमिहीनों को फालतू भूमि देने की नीति रही है । लेकिन भूमिहीनों ने पूरक साधनों की कमी तथा जोखिम उठाने की अनिच्छा के कारण आबंटित भूमि का कोई अच्छा उपयोग नहीं किया । बेहतर नीति यह होगी कि फालतू भूमि सीमांत किसानों को आबंटित की जाए और उनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाया जाए । आर्थिक दृष्टि से वे भूमिहीनों की तुलना में कोई ज्यादा बेहतर स्थिति में नहीं हैं । आम तौर पर वे गरीबी की रेखा से नीचे हैं और अपनी आमदनी को पूरा करने के लिए वेतन रोजगार की तलाश में रहते हैं । जीवन स्तर तथा सामाजिक-आर्थिक दर्जे की दृष्टि से इन दोनों वर्गों में अंतर का पता लगा पाना, वास्तव में आसान नहीं है । यदि फालतू भूमि उन्हें आबंटित कर दी जाए तो उनके वर्तमान जोत में इस जमीन के भी जुड़ जाने से उनके जोतों का आकार इतना अधिक बढ़ सकता है कि वे गरीबी की रेखा से ऊपर पहुंचने में सफल हो सकते हैं । □

**अनुवाद : रामबिहारी विश्वकर्मा**

# गांवों का वैभव

**मोहन चन्द्र मन्टन**

गांवों को गंवई गन्ध मिले
न कि नगरों का छल-छन्द मिले
सीधे-सादे अपने किसान
उनमें ही है हिन्दोस्तान
है कर्म क्षेत्र ही कुरुक्षेत्र
खुलते विकास के जहां नेत्र
मिट्टी में होता जहां स्वर्ण
श्रम से धरती का हरित वर्ण,
हरियाली में हो खुशहाली
झहती लह लहा जहां डाली
पंछी भी गाते यही गान
गांवों में ही हिन्दोस्तान ।
गांधी के सपनों का भारत
हो नव विकास से आभारत ।
समृद्धि चतुर्दिक नवोत्थान
से आए सबमें नई जान
हो ग्राम भूमि में नव सुधार
कर पिछड़ेपन में परिष्कार ।
हो खेत उसी के जो किसान
खेती करना जिसका प्रमाण ।

**ए.बी. 904, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-23**

---

जिस दिन जमीन जोतन वाले अपनी ताकत को पहचान लेंगे, जमींदारी की कुप्रथा ध्वस्त हो जायेगी । जमींदार उस समय क्या कर सकेगा जब ये उठकर कह देंगे कि जब तक हमें ठीक से खाने-पहनने के लिए और बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए पर्याप्त मजदूरी नहीं मिलेगी हम जमीन को हाथ नहीं लगायेंगे । दरअसल, मेहनतकश का उत्पादन पर पूरा हक है । अगर मेहनतकश लोग सूझबूझ के साथ एक हो जायें तो वे अजेय शक्ति बन सकते हैं । इसी सोच के कारण ही मैं वर्ग संघर्ष को आवश्यक नहीं मानता ।

**—महात्मा गांधी**

भूमि सुधारों का विशेष महत्व है क्योंकि इनके बिना खासकर भारत जैसे घनी आबादी वाले देश में कृषि उत्पादकता में क्रांतिकारी सुधार नहीं आ सकता । लेकिन भूमि सुधारों का मुख्य उद्देश्य काफी गहरा है । इनका उद्देश्य ठहराव से जकड़े हुये समाज में पुराने वर्गगत ढांचे को समाप्त करना है ।

**—जवाहरलाल नेहरू**

---

# भूमि सुधार कानूनों का नया रूप

नवीन चन्द्र जोशी
रीडर, मोतीलाल नेहरू कालेज, नई दिल्ली

**कानूनी उपायों और अन्य व्यवस्थाओं के अलावा सबसे चिंताजनक बात यह है कि अब तक देश में भूमि सुधार संबंधी सभी उपायों को बहुत बेमन से और लापरवाही के साथ लागू किया गया है । और भूमि संबंधी संसाधनों का उचित प्रबंध भी नहीं हो पाया है । नीति निर्माताओं द्वारा बरती गई अपेक्षा ही इस क्षेत्र में सबसे अधिक मुखर रूप से सामने आती है ।................. .....भूमि सुधारों के अंतर्गत सिर्फ ग्रामीण समुदाय के सभी वर्गों के बीच उपलब्ध भूमि के उचित वितरण पर ही ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि जोत की चकबंदी, भूमि का समतलीकरण, और कृषि उत्पादकता बनाये रखने के लिए आवश्यक मिट्टी की देखभाल के उपाय भी किये जाने चाहिये । भू-स्वामित्व और भू-उत्पादकता दोनों को ही भूमि सुधार उपायों का अभिन्न अंग बना दिया जाना चाहिये ।**

भारत सरकार इन दिनों राज्यों में, काश्तकारी से सम्बद्ध भूमि सुधारों के बारे में, ठोस उपाय करने पर विचार कर रही है । इसमें कृषि भूमि को गैर कृषि उपयोग के लिये हस्तांतरित करने पर प्रतिबंध, पट्टेदारी तथा धार्मिक और अन्य संस्थाओं के किरायेदारों को स्वामित्व के अधिकार प्रदान करने पर प्रतिबंध के लिये वैधानिक व्यवस्था शामिल है । सरकार ने राज्यों से अनुरोध किया है कि वे सातवीं योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये यह उपाय करें । यह भी कहा गया है कि कृषि उत्पादन की नीति मुख्य रुप से भूमि तथा काश्तकारी सुधारों से सम्बद्ध कानूनों को कारगर ढंग से लागू करने पर ही सफल हो सकेगी ।

व्यक्तिगत खेती की परिभाषा के संदर्भ में कानूनों में कुछ संशोधन भी किया जा सकता है, ताकि उनमें कुछ विशेष मुद्दे शामिल किये जा सकें । जैसे खेती में होने वाले हानि लाभ की पूरी जिम्मेदारी किसान को उठानी चाहिये और उसे फसल मौसम के अधिकांश हिस्से में जमीन से पांच किलोमीटर के दायरे के भीतर ही रहना चाहिये । उसे सिर्फ खेती के काम का प्रबंध ही नहीं करना चाहिये बल्कि व्यक्तिगत रुप से या परिवार के सदस्यों की श्रम में भागीदारी भी होनी चाहिये । उसकी आय का मुख्य हिस्सा खेती से आना चाहिये ।

कृषि भूमि की हदबंदी सहित भू-काश्तकारी कानूनों की खामियों को दूर करने के लिये इस तरह के अनेक संशोधनों पर विचार किया जा रहा है । अब तक के अनुभवों से सिद्ध हो गया है कि भूमि सुधार व्यवस्थाओं को कारगर ढंग से लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि या तो कानूनों में दोष है या फिर मुकदमेबाजी से उनके क्रियान्वयन में बाधा डाली जाती है । भूमि की हदबंदी के मामले में मुकदमेबाजी के कारण राज्य सरकारें उस पूरी जमीन पर कब्जा नहीं कर पातीं जिसे फालतू घोषित कर दिया जाता है ।

इस स्थिति से निपटने के लिये 1983 का 48 वां संविधान संशोधन विधेयक संसद ने अगस्त 1984 में पास किया । इस संशोधन से 14 से अधिक भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नौवी

अनुसूची में शामिल किया गया, ताकि उन्हें अदालत में चुनौती न दी जा सके । 1984 के अंत तक फालतू घोषित की गयी 42.81 लाख एकड़ जमीन में से केवल 21.22 लाख एकड़ जमीन ही भूमिहीनों में बांटी जा सकी । इससे लाभान्वित लोगों की कुल संख्या 15.91 लाख है, जिससे सिद्ध होता है कि औसतन एक व्यक्ति को 1.33 एकड़ जमीन दी गयी, जो किसी भी दृष्टि से पर्याप्त नहीं मानी जा सकती ।

कुछ महीने पहले भूमि सुधारों से सम्बद्ध एक सरकारी कार्य दल ने काश्तकारी की सुरक्षा और छोटे किसानों में भूमि के उचित वितरण को सुनिश्चित करने के लिये व्यापक सिफारिशें कीं । इस दल की अन्य सिफारिशों में उच्च न्यायालयों की विशेष पीठों की स्थापना, भूमि हदबंदी के बकाया मुकदमों को निपटाने के लिये मौजूदा पीठों में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाना, फालतू भूमि प्राप्त करने वाले काश्तकारों की सुरक्षा और फालतू भूमि को तत्काल सार्वजनिक हित के लिये उपयोग करने के लिये कड़ी कानूनी व्यवस्था करना शामिल है ।

इस दल ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि अनेक उपायों के बावजूद मुकदमेबाजी के कारण भूमि हदबंदी कानूनों को लागू करने का काम खटाई में पड़ गया है । करीब सोलह लाख एकड़ फालतू जमीन मुकदमेबाजी में फंसी पड़ी है और ये मामले दस साल से भी अधिक समय से अदालतों में विचाराधीन हैं । रिपोर्ट के अनुसार "भूमि कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची में शामिल करने से कुछ लोगों ने यह मान लिया कि मुकदमेबाजी से छुटकारा मिल जायेगा लेकिन दुर्भाग्यवश ये उनका भ्रम ही था । नौवीं अनुसूची में शामिल किये जाने पर कानूनों को केवल इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उनसे बुनियादी अधिकारों का हनन होता है । लेकिन केशवानंद भारती मुकदमें में फैसले के बाद से इस सुरक्षा को भी चुनौती दी जा सकती है ।" लेकिन फिर भी इस दल ने यह माना है कि अंतरनिहित सीमाओं के बावजूद भूमि सुधार कानूनों को नौवीं अनुसूची में शामिल किये जाने से काफी लाभ होगा ।

कानूनी उपायों और अन्य व्यवस्थाओं के अलावा सबसे चिंताजनक बात यह है कि अब तक देश में भूमि सुधार संबंधी सभी उपायों को बहुत बेमन से और लापरवाही के साथ लागू किया गया है और भूमि संबंधी संसाधनों का उचित प्रबंध भी नहीं हो पाया है । नीति निर्माताओं द्वारा बरती गई अपेक्षा ही इस क्षेत्र में सबसे अधिक मुखर रुप से सामने आती है । जमीन के स्वामित्व और आकार के बारे मे सही सही लेखा जोखा उपलब्ध न होने के कारण काश्तकार की सुरक्षा से संबंधित कानूनों को कारगर ढंग से लागू नहीं किया जा सका है । यदि जमीन के खाता खतौनी में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है तो वह व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि सम्बद्ध जमीन पर उसका कब्जा है । विभिन्न राज्यों में, काश्तकारों को भू-स्वामित्व का अधिकार देने से सम्बद्ध कानूनों के परिणामस्वरुप करीब 40 लाख काश्तकारों को 90 लाख एकड़ से अधिक जमीन के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हो गया है । लेकिन यह संख्या वास्तविक संख्या के मुकाबले बहुत कम है । कुछ काश्तकार खरीद मूल्य दे पाने में असमर्थ हैं, जब कि कुछ काश्तकार जमींदारों के दबाव में आकर यह कह देते हैं कि वे जमीन पर कब्जा करने के लिये इच्छुक नहीं हैं ।

राज्यों को सलाह दी गयी है कि वे विभिन्न अदालतों में विचाराधीन मुकदमों की समीक्षा करके यह पता लगायें कि कितने मुकदमों को ऐसे ही दूसरे मामलों में किये गये फैसलों के आधार पर अदालतों में तेजी से निपटाया जा सकता है । ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मंत्रालय ने हाल ही में, राज्य सरकारों से आग्रह किया है कि वे हर जिले में, और कम से कम ऐसे जिलों में जहां भूमिहदबंदी संबंधी मुकदमों की संख्या अधिक है, इन मुकदमों की प्रगति पर नजर रखने के लिए विशेष सैल बनायें । हालांकि विभिन्न राज्यों में समानता लाने के उद्देश्य से करीब एक दशक पहले ही भूमि हदबंदी की नयी नीति अपना ली गयी थी लेकिन फिर भी उसके तरीके अभी तक भिन्न भिन्न हैं ।

23 जुलाई 1972 को कृषि भूमि की हदबंदी के बारे में हुए मुख्यमंत्री सम्मेलन के निष्कर्षों पर आधारित मार्गनिर्देश इस प्रकार हैं –

1. उत्तम किस्म की जमीन यानि जिस जमीन में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो और जो साल में कम से कम दो फसलें दे सके, के मामले में हदबंदी की सीमा दस से 18 एकड़ के बीच होनी चाहिये ।
2. इससे कुछ घटिया किस्म की जमीन की सीमा अधिक हो सकती है लेकिन किसी भी स्थिति में यह 54 एकड़ से अधिक नहीं होनी चाहिये ।
3. यह सीमा पांच सदस्यों के परिवार की इकाई पर लागू होनी चाहिये लेकिन जहां परिवार बड़ा हो, वहां प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के लिये भूमि की छूट दी जानी चाहिये लेकिन एक परिवार के लिए कुल क्षेत्रफल हदबंदी की सीमा के दुगुने से अधिक नहीं होना चाहिये ।
4. संशोधित हदबंदी कानूनों को 24 जनवरी 1972 की बाद की तिथि से लागू नहीं किया जाना चाहिये ।

5. यह सीमा चाय, काफी, रबर, इलायची, और कोको के बागानों की जमीन पर लागू नहीं होनी चाहिये ।

6. राज्य सरकारें अपनी इच्छा से वर्तमान धार्मिक लोकहितकारी और सार्वजनिक शिक्षा संस्थानों के लिये इस सीमा में छूट दे सकती हैं ।

7. निजी ट्रस्टों को सीमा से अधिक भूमि रखने की छूट नहीं दी जानी चाहिये ।

8. फालतू भूमि के वितरण में, भूमिहीन कृषक मजदूरों विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों के मजदूरों को प्राथमिकता दी जानी चाहिये ।

ठोस राजनीतिक निर्णय शक्ति, समर्थन, मार्ग-दर्शन और नियंत्रण आवश्यक है । देश के ग्रामीण क्षेत्रों की मौजूदा सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के संबंध में यह स्पष्ट हो गया है कि राजनीतिक संकल्प-शक्ति के बिना भूमि सुधार के क्षेत्र में कोई प्रमुख प्रगति की आशा नहीं की जा सकती ।"

इसका परिणाम यह हुआ है कि भूमि हदबंदी कानूनों का क्रियान्वयन भूमि की दलाली की समाप्ति और काश्तकारी सुधार उपायों तक ही सीमित रह गया है । अनुमान है कि सन् 2000 तक मध्यम दर्जे के खेतों की संख्या में 33 प्रतिशत की वृद्धि होगी, जब कि लघु,अर्द्ध मध्यम और बड़े खेतों की संख्या में क्रमशः

**'अब तक भूमि सुधारों पर भू-स्वामित्व, भूमि हदबंदी, और काश्तकारों की सुरक्षा की दृष्टि से ही विचार किया गया है । लेकिन छोटे मंझोले किसानों को उत्पादन बढ़ाने में सहायता देने के लिये यह जरुरी है कि भूमि सुधारों को स्वामित्व और उत्पादन से जोड़ा जाये और उसमें ऐसे उपाय शामिल किये जायें जिनसे भूमि का अधिक कारगर इस्तेमाल हो सके ।'**

विभिन्न राज्यों में हदबंदी कानूनों के लिये इन दिशा-निर्देशों के परिणामस्वरुप निश्चय ही भूमिहीनों के कुछ वर्गों को फालतू भूमि के वितरण से लाभ हुआ है । पट्टेदारी की सुरक्षा से बटाई पर काम करने वाले लोगों को भूमि और खेती की किस्म में सुधारों पर ध्यान देने में मदद मिली है । अब यह महसूस किया जाने लगा है कि यदि भूमि सुधारों को गंभीरता से लागू किया जाय तो गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम को काफी हद तक सफल बनाया जा सकता है ।

इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं कि बड़े खेतों के मुकाबले छोटे खेतों में ज्यादा सघन खेती होती है । एक के बाद एक योजनाओं में, भूमि सुधारों से संबंधित लक्ष्यों, उन्हें प्राप्त करने के उपायों, और कानूनों में परिवर्तन सहित विभिन्न नीति गत मुद्दों पर विस्तार से विचार विमर्श हुआ है । छठी योजना के दस्तावेज में कहा गया था कि "भूमि सुधारों की दिशा में जनक प्रगति न होने का कारण नीतिगत खामिया नहीं हैं बल्कि इसके लिये उनका लापरवाही से किया गया क्रियान्वयन दोषी है ।" हदबंदी कानूनों और कृषि जोत की सीमा बढ़ाने पर रोक के कानूनों को लागू करने के मामले में ठोस कार्रवाई के संकल्प का अभाव है और चोरी छिपे रखी गयी जमीनों और बेनामी जमीनों का पता लगाने पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया है । भू-संबंधों के बारे में गठित कार्यदल (1973 योजना आयोग) ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रुप से कहा है कि "भूमि सुधारों से सम्बद्ध उपायों और कानूनों को बनाने तथा उनको कारगर ढंग से लागू करने के लिये

23, 29, और 50 प्रतिशत की कमी आयेगी । कुल श्रम शक्ति में कृषि मजदूरों के बढ़ते हुए अनुपात में भाड़े के श्रम का नया मुद्दा पैदा कर दिया है जिससे खेतीबाड़ी में पूंजीवादी संबंधों का तेजी से उदय हुआ है । काश्तकारी कानूनों के अंतर्गत छोटे भूमिधरों के साथ भी अन्याय हुआ है । कुछ राज्यों में उन्हें व्यक्तिगत खेती के लिये भूमि रखने की अनुमति नहीं दी गयी है । विधवाओं और नाबालिगों को उचित संरक्षण नहीं मिला है । समुदाय के हस्तक्षेप के बिना कोई लगान नहीं मिलता, और न ही कोई खरीदफरोख्त हो पाती है । आमतौर पर दूसरी जाति के लोगों को भी जमीन नहीं बेची जाती और किसी तरह की काश्तकारी की प्रथा भी नहीं रही है । भूमि संबंधी विवाद जनजातीय परिषदें निपटाती हैं ।

अब तक भूमि सुधारों पर भू-स्वामित्व, भूमि हदबंदी, और काश्तकारों की सुरक्षा की दृष्टि से ही विचार किया गया है । लेकिन छोटे और मंझोले किसानों को उत्पादन बढ़ाने में सहायता देने के लिये यह जरुरी है कि भूमि सुधारों को स्वामित्व और उत्पादन से जोड़ा जाये और उसमें ऐसे उपाय शामिल किये जायें जिनसे भूमि का अधिक कारगर इस्तेमाल हो सके । उदाहरण के लिये भूमि को एक स्थान पर इक्ट्ठा किये बिना जल आपूर्ति की व्यवस्था का प्रबंध कठिन हो जाता है और सिंचाई के क्षेत्र में हमारे निवेश का पूरा लाभ नहीं मिल पाता । अधिकांश राज्यों ने जमीन की चकबंदी के लिये कानून बनाये हैं । अब चकबंदी कराना जरुरी

राज्यों द्वारा काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार देने के लिए कानून बनाने की प्रक्रिया शुरु कर दी जायेगी । 1982-83 तक फालतू भूमि लेने और उसे वितरित करने का कार्य पूरा कर लिया जायेगा और 1985 तक भूमि अभिलेख अद्यतन बना लिये जायेंगे तथा चकबंदी का 10 वर्षों में सम्पन्न होने वाला कार्यक्रम शुरु कर दिया जायेगा ।

जहां तक भूमि की अधिकतम सीमा संबंधी कानूनों का प्रश्न है ये कानून पूर्वोत्तर के कुछ क्षेत्रों तथा अंदमान व निकोबार द्वीप समूह और गोआ, दमन व दीव को छोड़कर सारे देश में लागू हैं । पूर्वोत्तर के राज्यों-नगालैंड, मेघालय तथा अरूणाचल में भूमि समुदाय की सम्पत्ति होती है । इस कारण ये कानून वहां नहीं हैं ।

पहले पहल छठे और सातवें दशक में जोत की अधिकतम सीमा लगायी गयी थी । बाद में 1972 में इस विषय पर राष्ट्रीय दिशा निर्देश बनाए गये । सातवीं योजना के दस्तावेज के अनुसार अधिकतम भूमि कानूनों के अंतर्गत 74 लाख एकड़ ज़मीन फालतू घोषित्त की जा चुकी है, 56 लाख एकड़ जमीन का कब्जा लिया जा चुका है और44 लाख एकड़ भूमि वितरित की जा चुकी है । इस प्रकार फालतू घोषित जमीन में से 30 लाख एकड़ जमीन का वितरण नहीं हो पाया है । इसमें से 16 लाख एकड़ भूमि मुकदमें में फंसी हुई है । स्पष्ट है कि फालतू भूमि का अधिकांश भाग मुकदमें बाज़ी के कारण वितरित नहीं हो पाया है । भूमि सुधार संबंधी कानूनों को नवीं अनुसूची में शामिल किये जाने के कारण इन मामलों में दीवानी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को समाप्त कर दिया गया है । यद्यपि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय रिट (42 वां संशोधन) में उच्च न्यायालयों के रिट क्षेत्राधिकार को समाप्त करके भूमि अधिकरण गठित करने की व्यवस्था है तथापि इस संबंध में अपेक्षित कार्रवाई अभी नहीं हुई है ।

वास्तविकता यह है कि भूमि की अधिकतम सीमा कानूनों के परिणामस्वरुप घोषित फालतू ज़मीन कृषि गणना के आधार पर अनुमान से कहीं कम है तथा भूमि के पुनर्वितरण के जरिए किये जाने वाले इस सुधार की मात्रा इतनी कम है कि इससे भू-स्वामियों और खेतिहर मज़दूरों की स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है । इन उपायों के वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके कारणों की जांच-पड़ताल की जाए और उनसे निपटने के लिए कुछ व्यावहारिक कदम उठाये जायें । उदाहरण के तौर पर भूमि की अधिकतम सीमा की गणना करने में वयस्क पुत्रों को पारिवारिक इकाई में ही शामिल किया जाये और उन्हें एक स्वतंत्र इकाई न माना जाये ।

इसी तरह सार्वजिनक सिंचाई व्यवस्था का लाभ उठाने वाली जमीन पर राज्यों द्वारा यथार्थपरक ढंग से अधिकतम सीमा लागू की जानी चाहिए । पिछले पन्द्रह वर्षों के दौरान विशेष रूप से सिंचाई के द्वारा खेती के योग्य भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए सरकार ने काफी धन व्यय किया है । परिणामत: बहुत से भू-स्वामियों के पास विनिर्दिष्ट वर्गों के लिए निर्धारित अधिकतम सीमा से कहीं अधिक जमीन होगी । कुछ राज्यों ने इस प्रयोजन के लिए अभी तक विशिष्ट कानूनी व्यवस्था नहीं की है । ऐसी जमीनों का पूरा सर्वेक्षण किया जाना चाहिए जिन्हें सरकारी खर्च पर किये गये भूमि विकास तथा सिंचाई सुविधाओं का लाभ मिला है ।

अनेक राज्यों में अधिकतम सीमा निर्धारण की दृष्टि से भूमि का वर्गीकरण सुनियोजित ढंग से नहीं किया गया है जिसका संभवत : यह परिणाम हुआ है कि अच्छी श्रेणी की जमीन की अधिकतम सीमा जिस स्तर पर निर्धारित होनी चाहिए थी उससे अधिक स्तर पर निर्धारित हुई है । कई स्थानों पर भू-अभिलेख पुराने पड़ गये हैं और इसलिए उनमें जमीनों के वास्तविक वर्गीकरण में हुए बदलावों का उल्लेख नहीं है । परिणामस्वरुप, अभिलेखों में दिये गये वर्गीकरण के आधार पर अधिकतम सीमा के निर्धारण से कई स्थानों पर कानून सही ढंग से लागू नहीं हो पाया है । राज्यों द्वारा इन बातों की जांच की जानी चाहिए ।

अधिसंख्य राज्यों में विभिन्न श्रेणियों की जमीनों के लिए अधिकतम सीमा के विभिन्न स्तरों की व्यवस्था है । यह वर्गीकरण मोटे तौर पर भूमि की अधिकतम सीमा से संबंधित राष्ट्रीय दिशा-निर्देशों के अनुरुप है । लेकिन कई स्थानों पर भू-अभिलेखों में बहुत सी श्रेणियां दर्शायी गयी हैं । जबकि राष्ट्रीय दिशा निर्देशों में तीन या चार तरह की श्रेणियां ही दी गई हैं। इस प्रकार भूमि की अधिकतम सीमा संबंधी कानून में उल्लिखित वर्गीकरण और भू-अभिलेखों में दर्शायी गयी श्रेणियों में बहुत अंतर है ।

इस संबंध में सातवीं योजना में प्रस्तावित उपायों में काश्तकारों के अधिकारों की सुरक्षा और लगान के विनियमन के लिए राज्यों द्वारा कानून बनाने की बात दुहराते हुए यह कहा गया है, "इस प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए स्थानीय सामुदायिक और जन संस्थानों को अधिकाधिक मात्रा में संबद्ध करके, काश्तकारों को पंजीकृत करने के लिए शीघ्र सर्वेक्षण करने के प्रयास किये जाएंगे । ऐसी कार्रवाई उन राज्यों में भी जरूरी होगी जहां काश्तकारी उन्मूलन के बाद भी अनेक कारणों से अनौपचारिक रूप से फिर शुरु हो गयी है । आदिवासियों और जनजातियों की उपयुक्त कानून द्वारा उनकी भूमि की न केवल दूसरे आदिवासियों

**को बल्कि उनमें से ही बड़े भू-धारियों को न हस्तांतरित होने देने से रक्षा की जायेगी ।" (सातवीं योजना, खंड-II)**

उपलब्ध फालतू भूमि के वितरण के विषय में यह स्वीकार करते हुए कि जिस फालतू भूमि की पहचान की जा चुकी है उसका कब्जा लेने और वितरण करने में यथेष्ट कार्य नहीं हुआ है, सातवीं योजना में यह महसूस किया गया कि "कानूनी और प्रशासनिक रूकावटों के कारण घोषित फालतू भूमि और उसके वास्तविक कब्जे तथा वितरण में बहुत अंतर रहा है । इस अन्तर को कम करने के लिए उपयुक्त उपाय करने होंगे । राज्यों को ख़ास तौर से नियंत्रण क्षेत्रों में अधिकतम सीमा की फालतू भूमि का पुनः निर्धारण करना होगा ।" इसके अतिरिक्त अधिकतम सीमा कानूनों के अंतर्गत अधिग्रहण की गयी बहुत सी भूमि ऐसी है जो वितरण तथा खेती के योग्य नहीं है । इस संदर्भ में सातवीं योजना में कहा है कि "जिस फालतू भूमि का खेती के लिए अनुपयुक्त होने के कारण वितरण नहीं किया जा सकता, उसके सबसे बढ़िया उपयोग के लिए राज्य सरकारों को उसका कब्जा लेना होगा ताकि उस पर कोई अवैध कब्ज़ा न कर ले और साथ ही सुनियोजित तरीके से उसका विकास सुनिश्चित किया ज़ा सके ।"

फालतू भूमि के आवंटितियों की वित्तीय सहायता की स्कीम सातवीं योजना में चालू रखी जायेगी । इसे समुचित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम, सूखा-प्रभावित क्षेत्र कार्यक्रम जैसे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के साथ मिलाने से गरीबों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने की दृष्टि से उनकी भूमि के आसपास अनेक आर्थिक क्रिया कलापों को बढ़ावा मिलेगा । भूमि सुधार की कोई भी नीति के अपने आप सफल होने की आशा नहीं की जा सकती । व्यापक पैमाने पर लोगों को भूमि देकर तथा उन्हें कृषि आदान और सेवायें आसानी से उपलब्ध कराने से खेतों की उत्पादकता में काफी वृद्धि आयेगी तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था का व्यापक रूप से विकास होगा । विकास को सुनिश्चित करने तथा समय पर ऋण उपलब्ध कराने में सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं को प्रमुख भूमिका निभानी होगी ।

भूमि सुधारों में चकबन्दी एक महत्वपूर्ण तत्व है लेकिन अनेक राज्यों में इस संबंध में अपेक्षित सफलता नहीं मिली है । इसके कुछ कारणों पर सातवीं योजना में विचार किया गया है । ये कारण है :—

1. काश्तकारों और बटाईदारों में उजड़ने का डर
2. बाढ़ तथा अन्य प्राकृतिक विपदाओं के समय भूमि के अलग-अलग टुकड़ों में होने में लाभ
3. यह आशंका कि अपेक्षाकृत अधिक बड़े किसानों को इससे अधिक लाभ मिलेगा ।

इन कारणों को ध्यान में रखते हुए सातवीं योजना में यह प्रस्ताव किया गया है कि "जहां तक संभव हो छोटे और सीमांत किसानों की जोतों की चकबंदी इस तरह की जानी चाहिए कि उनसे भूमि के जुड़े हुए खंड बनें ताकि उनके लिये भूमि जल का उपयोग तथा विभिन्न कृषि सेवाओं की व्यवस्था कम लागत पर की जा सके ।"

इसी प्रकार भूमि सुधार उपायों के लिए भूमि अभिलेखों का बहुत महत्व है । इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि सभी राज्यों में भूमि अभिलेखों को समय-समय पर नियमित रुप से अद्यतन बनाया जाये । सातवीं योजना के प्रस्तावों में कहा गया है कि जिन ज़मीनों की पैमाइश नहीं हुई है उनका वैज्ञानिक सर्वेक्षण कराना होगा और जिन काश्तकारों और बटाईदारों के अधिकार अभी दर्ज नहीं हुए हैं उन्हें दर्ज करना होगा । इस संबंध में केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीम का प्रस्ताव किया गया है जिसे भूमि अभिलेखों को अद्यतन बनाने के लिए राज्यों और केन्द्र द्वारा बराबर अंशदान के आधार पर क्रियान्वित किया जायेगा । आधार स्तर तथा पर्यवेक्षी स्तर पर राज्यों की राजस्व व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए उन्हें सहायता भी दी जायेगी । इसके अलावा राजस्व अधिकारियों तथा सर्वेक्षण और बन्दोबस्त कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने, उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने की दृष्टि से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जायेगा । इस प्रस्तावित केन्द्र प्रायोजित स्कीम के लिए सातवीं योजना में केन्द्र में 36.71 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है । इन कार्यक्रमों के लिए राज्यों में 353.88 करोड़ रुपये तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए 5.24 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है ।

**जी1/727, सरोजिनी नगर**
**नयी दिल्ली-110023**

Jaykaylon

# जे. के. सिन्थटिक्स लि.

रजि० ऑफिस : कमला टावर, कानपुर फैक्ट्री : कोटा : (राज.)

निर्माता:

नायलॉन एवं पोलियस्टर, मोनो एवं मल्टीफिलामेंट धागे वार्पनिटिंग, बुनाई और होजरी के लिए, मछली के जाल तथा औद्योगिक व सुरक्षा के प्रयोग के लिए मजबूती से बटे हुए धागे, पोलियस्टर स्टेपल फाइबर, नायलॉन टायर कार्ड, ऐक्रीलिक फाइबर तथा सीमेंट इत्यादि

विक्री कार्यालय :

कानपुर, बम्बई, सुरत, दिल्ली, लुधियाना, अमृतसर, वाराणसी कलकत्ता, सलेम और अहमदावाद

मैं हिटलर जैसी ताकत नहीं चाहता । मैं तो एक स्वतंत्र किसान की शक्ति चाहता हूं । मैंने हमेशा स्वयं को भी एक किसान समझने की कोशिश की है, लेकिन मैं ऐसा हो नहीं पाया हूं । मेरे और एक किसान के बीच अन्तर यह है कि वह किसान और मजदूर अपनी इच्छा से नहीं बल्कि हालात से मजबूर होकर बना है । मैं अपनी इच्छा से किसान और मजदूर बनना चाहता हूं और जब मैं उसे भी उसकी इच्छा से किसान और मजदूर बना लूंगा तो मैं उससे वे बेड़ियां भी तुड़वा सकूंगा जिनसे वह आज भी जकड़ा हुआ है और अपने मालिक की गुलामी करने पर मजबूर है ।

***

—महात्मा गांधी

# भूमि सुधारों के राजनीतिक और आर्थिक पहलू

डी. ब्राइट सिंह

**स्वतन्त्रता के बाद सरकार ने एक समुदाय द्वारा दूसरे समुदाय का शोषण समाप्त करने और सबको सामाजिक न्याय तथा समान अधिकार देने का दायित्व सम्भाला..... भारत में भूमि सुधारों की शुरूआत बिचोलियों को हटाने से हुई । भारत ने इस दिशा में पहले उपाय के रूप में जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी ।**

**आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण लोगों को हताश, अस्वस्थ और दयनीय "सर्वहारा" बनने देने की बजाय उन्हें कृषि और उद्योग के क्षेत्रों के लिए उत्साही तथा परिश्रमी कार्यकर्त्ताओं की सुरक्षित फौज के रूप में बदला जाए । यह अत्यंत आवश्यक परिवर्तन जन-साधारण को शिक्षित करके ही लाया जा सकता है ।**

भूमि सुधारों के दो मुख्य उद्देश्य हैं । ये हैं सामाजिक न्याय और भूमि का और उत्तम उपयोग । सामाजिक न्याय के लिए जरुरी है कि भू-सम्पत्ति थोड़े से लोगों के हाथों में केन्द्रित न हो, क्योंकि ऐसा होने पर बहुसंख्य लोग भूमि के स्वामित्व से वंचित रह जाते हैं । बड़े जमींदार और छोटे किसान भूमि को उसी प्रकार आय के साधन के रुप में इस्तेमाल करते हैं जिस तरह उद्योगपति अपनी पूंजी लगाकर उत्पादन करते हैं और धन कमाते हैं । परन्तु दोनों में पर्याप्त भिन्नता है । इनमें महत्वपूर्ण अंतर यह है कि उद्योगपति अधिकतर मामलों में अपने प्रयासों से पूंजी जुटाता है और अपनी संपत्ति बढ़ाकर धन कमाने की क्षमता में वृद्धि करता रहता है, जबकि जमींदार को भूमि प्रायः अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में मिलती है और वह उसमें बिना कोई विशेष परिवर्तन किए अगली पीढ़ी को सौंप देता है । भूमि के कम उपयोग की समस्या इसी व्यवस्था से जुड़ी है । यदि कोई उद्योगपति अपनी मशीनों तथा उत्पादन के अन्य साधनों का उनकी क्षमता से कम इस्तेमाल करता है या उनका भरपूर उपयोग करने में विफल रहता है तो उसे अपना उद्योग बन्द कर देना पड़ता है । परंतु बड़े जमींदारों के साथ ऐसा कुछ नहीं होता । इस समस्या का सम्बंध भूमि सुधारों के दूसरे उद्देश्य–भूमि के

देश के आर्थिक विकास में भूमि सुधारों का बड़ा महत्व है । हम इसे क्रांतिकारी उपाय मानते हैं, लेकिन पूंजीवादी विचारधारा और व्यवस्था वाले देशों में भी भूमि सुधारों को यही प्राथमिकता दी गयी है ।

***

**—इन्दिरा गांधी**

भूमि सुधार एक ऐसी कड़ी परीक्षा है जिसमें हमारी राजनीतिक प्रणाली को खरा उतरना ही होगा । तभी यह प्रणाली कायम रह सकेगी । पर्याप्त अनाज की आत्म-निर्भरता के लिए भी यह नितांत आवश्यकता है ।

***

**—इन्दिरा गांधी**

अधिकतम उपयोग के साथ है । प्रश्न यह है कि विषमताएं कम करने और भू-संपत्ति के और न्यायसंगत वितरण से भूमि के और बढ़िया इस्तेमाल तथा उससे आय बढ़ाने में मदद मिलेगी या नहीं । पुराने जमाने के शासकों और सामन्तों की यह प्रवृत्ति थी जिसमें वे लोग ऐसे प्रभावशाली लोगों को बड़ी-बड़ी जागीरें दे देते थे, जो सैनिक अभियानों, कर वसूलने या प्रशासनिक कामों में उनकी सहायता करते थे और उनके प्रति वफादारी का परिचय देते थे । जमींदारी की सामंतवादी प्रथा इसी व्यवस्था की उपज है । जमींदार अपनी जमीन के हिस्से आगे अपने मातहतों को बख्शीश के रूप में देते रहे, जिसके फलस्वरूप जागीरों के टुकड़े होते गए और सारी जमीन छोटी-छोटी जमींदारियों में बंट गई किन्तु इनकी संख्या बहुत कम रही । ये बड़ी-बड़ी जोतें पुश्त-दर-पुश्त चलती रहीं, जिससे जमींदारी प्रथा कायम रही । जमीन पर वास्तविक खेतीबाड़ी का काम उस जमीन या जमींदार के मातहत काम करने वाले पट्टेदार या काश्तकार करते थे । क्योंकि पट्टेदार के पास न तो जमीन थी और न ही आय का कोई और साधन इसलिए वे पूरी तरह जमींदारों पर आश्रित हो गए । इसी कारण शोषण, बेदखली तथा अन्य तरह की सामाजिक बुराइयों ने जन्म लिया ।

स्वतंत्रता के बाद सरकार ने एक समुदाय द्वारा दूसरे समुदाय का शोषण समाप्त करने और सब को सामाजिक न्याय तथा समान अधिकार देने का दायित्व संभाला । 'आर्थिक दृष्टि कोण से भी इस प्रणाली का सबसे आपत्तिजनक पहलू यह है कि यह आधुनिकीकरण की आवश्यकताओं पर खरी नहीं उतरती, जिसमें भूमि का इस्तेमाल लाभ कमाने की दृष्टि से करने और कृषि कार्यों का संगठन व्यापारिक आधार पर करने पर बल दिया जाता है ।' भारत में भूमि-सुधारों की शुरुआत बिचौलियों को हटाने से हुई । भारत ने इस दिशा में पहले उपाय के रूप में जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी परन्तु इससे अधिकतर उन्हीं लोगों को लाभ हुआ जो बड़े पट्टेदार थे । उन्होंने और जमीन खरीद ली और मझौले तथा बड़े किसानों की श्रेणी में शामिल हो गए । दूसरी ओर जमींदार अपनी पहले की भूमि के काफी हिस्से पर अधिकार बनाए रखने में कामयाब हो गए और उनके सामाजिक तथा आर्थिक रुतबे में कोई अंतर नहीं आया । लगान पर काश्त करने वाले को सबसे कम लाभ हुआ । पट्टेदारों में जो गरीब थे, उन्हें बेदखल कर दिया गया । ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है । इस प्रकार इस योजना के अच्छे उद्देश्य और सिद्धांतों के बावजूद जमींदारी प्रथा की अधिकतर बुराइयां ज्यों की त्यों बनी रहीं ।

जमींदारी और बिचौलियों की प्रथा समाप्त करने का उद्देश्य यह है कि भूमि पर उन्हीं लोगों का स्वामित्व हो, जो वास्तव में उसे जोतते हैं । लेकिन कृषि भूमि का क्षेत्र निश्चित होने के कारण काश्तकारों को भूमि के मालिकाना अधिकार तभी दिए जा सकते हैं, जब भूस्वामियों को आवश्यकता से अधिक जमीन, जिसे उन्होंने उत्तराधिकार में अथवा कीमत देकर प्राप्त किया है, छोड़ देने पर मजबूर किया जाए । इसके लिए आवश्यक था कि भूमि के स्वामित्व की अधिकतम सीमा निश्चित की जाए और उससे अधिक बड़ी जोतों के टुकड़े किए जाएं ।

**'जाहिर है कि इस उपाय की सफलता इस बात पर निर्भर है कि ऐसी बड़ी-बड़ी जोतें कितनी हैं, जिनके टुकड़े किए जा सकें और अतिरिक्त भूमि कितनी उपलब्ध है । अनुमान है कि भारत में हदबंदी से अतिरिक्त भूमि केवल 70 लाख एकड़ है और औसत जोतें 5 एकड़ से भी छोटी हैं । यदि गरीब खेतिहर लोगों को फायदा पहुंचाना है तो भूमि की हदबंदी काफी कम करनी होगी ।'**

भूमि हदबंदी लागू करने के प्रयासों से कई तरह की समस्याएं और कठिनाइयां सामने आई हैं । "जाहिर है कि इस उपाय की सफलता इस बात पर निर्भर है कि ऐसी बड़ी-बड़ी जोतें कितनी हैं जिनके टुकड़े किए जा सकें और अतिरिक्त भूमि कितनी उपलब्ध है । अनुमान है कि भारत में हदबंदी से अतिरिक्त भूमि केवल 70 लाख एकड़ है और औसत जोतें 5 एकड़ से भी छोटी हैं । यदि गरीब खेतिहर लोगों को फायदा पहुंचाना है तो भूमि की हदबंदी काफी कम करनी होगी ।" दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंत (1960) तक भूमि हदबंदी कानून लगभग सभी राज्यों में लागू किया जा चुका था । भूमि सीमा अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग थी । उत्तर प्रदेश में यह 40-80 एकड़, हरियाणा और पंजाब में 27-100 एकड़, महाराष्ट्र में 18-126 एकड़ केरल में 12-15 एकड़ तथा पश्चिम बंगाल में 12-17 एकड़ थी ।

इसके अलावा भूमि सुधार के सिद्धांत और इसे लागू करने के उपाय तैयार करने में राजनीतिक प्रभाव तथा निहित स्वार्थों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

केरल राज्य में राजनीतिक ऊठापटक और दलीय विवादों के बावजूद भूमि सुधारों की दिशा में अधिक प्रयास हुए । 1957 में जब साम्यवादी सत्ता में आए तो जोतों की अर्धसामंती व्यवस्था को वदलने के प्रयास ईमानदारी से किए गए । कृषि सम्बंधी विधेयक का जो प्रारुप तैयार किया गया, वह साम्यवादियों की क्रांतिकारी मांगों और सत्तारुढ़ दल,जो कृषि में पूंजीवाद का महत्व स्वीकार करता था, के बीच समझौता था । विधेयक में सभी पट्टेदारों के लिए पट्टेदारी तय करने, बकाया लगान में काफी कमी करने और जमींदारों तथा बिचौलियों के भू-स्वामित्व के अधिकार सरकार को स्थानांतरित करने की व्यवस्था थी । भूमि सीमा कुछ अधिक (राज्य में जोतों के औसत आकार को देखते हुए) तय की गई, जो दो फसलों वाली जमीन के लिए 15 एकड़ और एक फसली जमीन के लिए 22.5 एकड़ थी । कृषि सुधार विधेयक 10 जून 1959 को विधानसभा में पारित हुआ । इसके बाद किन्हीं कारणों से वहां पर राष्ट्रपति शासन लागू हो गया । कांग्रेस प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने सत्ता में आने पर 1961 में कृषि सम्बंधी विधेयक को नरम बनाकर पारित किया । बाद में सत्ता में फिर परिवर्तन हुआ और विभाजित साम्यवादी दलों तथा समाजवादी गुट के संयुक्त मोर्चे ने 1969 में बिल पारित किया परंतु इसे लागू करने की दिशा में विशेष प्रयास नहीं किए जा सके । जिस वर्ष विधेयक पारित हुआ, उसी वर्ष सरकार गिर गई । इसके फलस्वरूप 1972 में कानून में संशोधन किया गया । संशोधन में छोटे पट्टेदारों को लाभ देने के लिए कुछ रियायतों के अलावा कानून को लागू करने के लिए ग्राम स्तर पर समितियां और तालुक स्तर पर भूमि बोर्ड बनाने का प्रावधान किया गया ।

केन्द्र और संघीय इकाइयों में अधिकारों के बंटवारे पर आधारित संघीय शासन प्रणाली में यह हमेशा आवश्यक नहीं होता कि राज्य जिन सुधारों को महत्वपूर्ण मानते हैं, वे लागू हो जाएं । जब केन्द्र और राज्यों में एक ही दल की सरकार हो तो विशेष दिक्कत नहीं आती, किन्तु जब दोनों में अलग-अलग दलों की सरकारें हों तो नीतियों में मतभेद स्वाभाविक ही है ।

भूमि सुधारों में प्रगति न होने में पट्टेदारों और काश्तकारों का अपना दृष्टिकोण भी बाधक रहा है । यदि गरीब और अमीर पट्टेदार मिल कर मोर्चा बांधते तो उनकी कठिनाइयां दूर होने की संभावनाएं कहीं अधिक होतीं । परन्तु ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि पट्टेदार अपने रोजगार और जीवन के अन्य साधनों के साथ-साथ वित्तीय तथा कृषि आदानों के लिए जमींदारों पर इतना अधिक आश्रित हैं कि किसी तरह का खतरा मोल लेने के बजाय, वे जो कुछ चल रहा है, उसी में संतुष्ट रहना उचित मानते हैं । यहां ध्यान देने की बात यह है कि पट्टेदार इतनी बुरी हालत में नहीं थे कि वे कारगर ढंग से संगठित होते और व्यवस्था को बदलने का कार्यक्रम हाथ में लेते । वास्तव में यही निष्क्रिय दृष्टिकोण भूमि सुधार के क्रांतिकारी उपाय लागू करने में बाधक है ।

**'पट्टेदार अपने रोजगार और जीवन के अन्य साधनों के साथ-साथ वित्तीय तथा कृषि आदानों के लिए जमींदारों पर इतना अधिक आश्रित हैं कि किसी तरह का खतरा मोल लेने के बजाय, वे जो कुछ चल रहा है, उसी में संतुष्ट रहना उचित मानते हैं । यहां ध्यान देने की बात यह है कि पट्टेदार इतनी बुरी हालत में नहीं थे कि वे कारगर ढंग से संगठित होते और व्यवस्था को बदलने का कार्यक्रम हाथ में लेते । वास्तव में यही निष्क्रिय दृष्टिकोण भूमि सुधार के क्रांतिकारी उपाय लागू करने में बाधक है ।'**

भूमि सुधारों के समर्थन में आर्थिक तर्क यह है कि यदि भूमि उसके वास्तविक काश्तकार को मिल जाएगी तो वह उसे अपनी समझकर उसमें अधिक से अधिक पैदावार करने को प्रोत्साहित होगा । जब पट्टेदारों को इस प्रकार प्रेरित किया जाएगा तो कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी और उनकी आय भी बढ़ेगी, जिससे बचत तथा पूंजी-निवेश को बढ़ावा मिलेगा । जो देश आय के बहुत बड़े हिस्से के लिए कृषि क्षेत्र पर आश्रित हैं, उसे निश्चित रुप से आर्थिक विकास के कार्यक्रम चलाने के लिए इसी क्षेत्र का योगदान लेना पड़ेगा ।

परन्तु इसके साथ कुछ प्रश्न भी जुड़े हैं । यह बात ठीक है कि पट्टेदार को जमीन के मालिकाना हक न होने के कारण वह भूमि के इस्तेमाल में अपनी पूरी ताकत नहीं लगा पाता । क्या इसका यह अर्थ है कि पट्टेदार जमीन के मालिकाना हक मिलने पर जो अतिरिक्त प्रयास करेगा, उसकी तुलना में जमींदार का योगदान महत्वहीन है ? और क्या पट्टेदार अपने आप में इतना चतुर और समझदार है कि यदि उसे साधन उपलब्ध करा दिए जाएं तो वह भूमि का बढ़िया से बढ़िया ढंग से इस्तेमाल करके अपनी आर्थिक स्थिति बेहतर बना सकेगा ।

जमींदारी और बिचौलिया प्रणाली समाप्त करने से बड़ी जोतें कट जाती हैं और जमीन पट्टेदारों तथा अन्य भूमिहीन लोगों में बंट जाती हैं। इससे औसत खेत का आकार छोटा हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि छोटे खेत में बुवाई-जुताई बड़े खेत के मुकाबले बढ़िया ढंग से होगी और इससे प्रति भूमि इकाई उत्पादन में वृद्धि होगी। परन्तु इस प्रश्न का ठोस उत्तर नहीं दिया जा सकता कि छोटा खेत अधिक लाभप्रद है अथवा बड़ा खेत। पट्टेदारों ने भूमि सुधारों के लिए जो हाय तौबा की वह भूमि का अधिकतम उपयोग करने के लिए नहीं बल्कि समानता के आधार पर की थी।' भारत में जो सर्वेक्षण तथा अध्ययन किए गए हैं उनसे विपरीत निष्कर्ष सामने आए हैं। 1960 के प्रारम्भ में देश के विभिन्न राज्यों में कृषि प्रबंध के आर्थिक पहलुओं के बारे में किए गए सर्वेक्षण से यह संकेत मिला कि प्रति एकड़ उत्पादन छोटे खेतों में बड़े खेतों के मुकाबले अधिक होता है। परन्तु पंजाब में अमृतसर और फिरोजपुर जिलों में किए गए सर्वेक्षण में इसके विपरीत तथ्य सामने आए, क्योंकि वहां खेत के आकार बढ़ने के साथ-साथ प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि होती गई। सर्वेक्षण के स्थानों के चयन में गलती होने की संभावना को ध्यान में रखते हुए इन निष्कर्षों को पूर्णरुपेण विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

'भूमि सुधारों की भांति कृषि उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में भी पहल सरकार की ओर से की गई। भारत में भूमि सुधार उपायों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का कार्यक्रम भी चलाया गया। इन कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने पर बहुत बड़ी धनराशि खर्च हुई और इसके लिए कई नए विभाग तथा कार्यालय बनाए गए। सरकार की बढ़ती हुई इस भूमिका का कारण और औचित्य यह बताया जाता है कि ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी स्तर पर कुछ नहीं हो रहा। भूमि सुधारों में जो मामूली सफलता मिली है, उससे लोगों को प्रेरित करने और उनमें आगे बढ़कर काम करने की भावना जगाने में कोई मदद नहीं मिली।'

इससे आर्थिक विकास में मानवीय योगदान कम हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण लोगों को हताश, अस्वस्थ और दयनीय "सर्वहारा" बनने देने की बजाय उन्हें कृषि और उद्योग के क्षेत्रों के लिए उत्साही तथा परिश्रमी कार्यकर्ताओं की सुरक्षित फौज के रुप में बदला जाए। यह अत्यंत आवश्यक परिवर्तन जनसाधारण को शिक्षित करके ही लाया जा सकता है। शिक्षा से उनमें नए-नए तरीके समझने, स्थानीय संगठनों में सक्रिय रुप से भाग लेने, अपनी समस्याओं और कठिनाइयों को सम्बंधित लोगों तक पहुंचाने तथा अपने हितों की रक्षा करने की क्षमता आएगी। कृषि को आधुनिक बनाने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में प्रशिक्षित लोग तैयार करने के लिए उच्च तथा तकनीकी शिक्षा के संस्थानों का विस्तार करना आवश्यक है। शिक्षा क्षेत्र तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य योजनाओं में धन लगाने से मानवीय पूंजी के निर्माण में मदद मिलेगी, जो कृषि में सुधार लाने तथा उसे समग्र आर्थिक विकास का सूत्रधार बनाने के लिए आवश्यक है।□

**'भूमि सुधारों की भांति कृषि उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में भी पहल सरकार की ओर से की गई। सरकार की बढ़ती हुई इस भूमिका का कारण और औचित्य यह बताया जाता है कि ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी स्तर पर कुछ नहीं हो रहा। भूमि सुधारों में जो मामूली सफलता मिली है, उससे आम लोगों को प्रेरित करने और उनमें आगे बढ़कर काम करने की भावना जगाने में कोई मदद नहीं मिली।'**

**अनुवाद : सुभाष चन्द्र सेतिया,**
**सी-7/134 ए, केशवपुरम,**
**लारेंस रोड, दिल्ली-35**

# भारत में भूमि सुधार

डा. बद्री बिशाल त्रिपाठी

कृषि अर्थव्यवस्था का निष्पादन स्तर तकनीकी व संस्थागत घटकों से प्रभावित होता है। तकनीकी घटकों का सम्बन्ध मुख्यतया प्रयोज्य आगतों की सघनता और विविधता से है जिसमें बीज, सिंचाई, उर्वरक, कृषि यंत्र और पौध संरक्षण मुख्य हैं। दूसरी ओर कृषि क्षेत्र के संस्थागत घटकों में भू-धारण प्रणाली, भूमि स्वामित्व का वितरण और कृषिगत रोजगार की संरचना सम्मिलित हैं। इनकी अनुकूलतायें कृषक को उपज बढ़ाने और कृषि में सुधार करने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। तकनीकी और संस्थागत परिवर्तन एक दूसरे के पूरक घटक के रुप में क्रियाशील होकर कृषि उत्पादन और उत्पादिता वृद्धि में योगदान करते हैं। संस्थागत परिवर्तन की कोटि में एक प्रमुख आयाम भूमि सुधार है। सामान्य रूप से लघु व सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक के हित में भूमि संसाधन का पुनर्वितरण भूमि सुधार कहलाता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में योजना आयोग के एक पेनल ने भूमि सुधार की परिकल्पना में तीन तत्वों पर विशेष महत्व दिया, प्रथम, भूधारण प्रथा और कास्तकारों की समस्या जिसके अंतर्गत मध्यस्थों का उन्मूलन, लगान में कमी और कास्तकारों को भूमि पर स्थायी अधिकार देने की व्यवस्था, द्वितीय-बड़ी जोतों पर सीमाबन्दी द्वारा जोतों के आकार में समानता लाने का प्रयत्न और तृतीय-कृषि का नवीन आर्थिक संगठन जिसमें अत्यन्त छोटी जोतों को सहकारी कृषि प्रणाली अथवा अन्य किसी सामूहिक क्रिया द्वारा बड़े आकार का बनाना। इस प्रकार विरासत से प्राप्त भूमि प्रणाली द्वारा सृजित कृषि उत्पादन के अवरोधों को दूर करना और भू-धारण प्रणाली में विद्यमान समस्त शोषण एवं सामाजिक अन्याय को दूर करना भूमि सुधार के उद्देश्य हैं। छठी पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार के उद्देश्यों को अधिक स्पष्ट हैं। रूप से व्यक्त किया गया है तथा मध्यस्थों की समाप्ति; लगान नियमन, कास्तकारी सुरक्षा तथा काश्तकारों को स्वामित्वाधिकार सहित काश्तकारी सुधार; जोतों पर सीमाबन्दी और अतिरिक्त भूमि का वितरण; जोतों की चकबन्दी और भूमि अभिलेखों का संकलन और नवीनीकरण को भूमि सुधार का मुख्य उददेश्य माना गया[1] अत: भूमि सुधार कार्यक्रम एक ओर भू-धारण प्रथाओं को बदलने के प्रति और दूसरी ओर उत्पादन इकाइयों को आर्थिक आकार में बदलने के प्रति प्रयत्नशील हैं।

भूमि की समस्या भारतीय कृषि में आधार भूत है। जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक बढ़ता जा रहा है। अर्थव्यवस्था के विविधीकरण की अपेक्षाकृत मंद गति और ग्रामोद्योगों के पतन के कारण भूमि समस्या अधिक दुरूह होती जा रही है। इस परिप्रेक्ष्य से भूमि सुधार किसी अर्थव्यवस्था की परंपरागत कृषि में निहित अवरोधों को दूर करता है और श्रम व भूमि संसाधनों को अपव्यय से बचाता है। भूमि सुधार एक संस्थात्मक परिवर्तन है और इसे तकनीकी परिवर्तन व वैज्ञानिक कृषि आरम्भ करने के पूर्व किया जाना चाहिये। यद्यपि कुछ ऐसी अर्थव्यवस्थाओं के भी उदाहरण उपलब्ध हैं जिन्होंने भू-धारण प्रणाली में समानता और सुधार लाने का विशेष प्रयास नहीं किया तथापि आर्थिक विकास में बहुत आगे बढ़ गये यथा जापान, हंगरी, इंग्लैंड आदि। इन अर्थव्यस्थाओं के भू-स्वामियों ने अपने लाभांशों का प्रयोग औद्योगिक विकास हेतु किया। दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण उपलब्ध हैं जहां कृषक इन लाभांशों का प्रयोग पूंजी निर्माण में नहीं करते हैं। इस अवस्था में विलासी व अनुत्पादक अतिरेक को घटाने के लिए भूमि साधन का पनर्वितरण आवश्यक है। दूसरी ओर समाज के वे लोग जो इस प्रकृति प्रदत्त संसाधन के लाभों से वंचित हैं उनका भी इस पर अधिकार उनके पक्ष में भी उसका पुनर्वितरण होना चाहिये।अधिकांश बड़े भूस्वामी स्वयं कृषि कार्य न करके असामियों व पट्टेदारों से कराते हैं जिनके कास्तकारी की कोई सुरक्षा नहीं होती है और इसके अभाव से कृषि कार्य में अपेक्षित रुचि लिया जाना संदिग्ध हो जाता है। अत: कास्त सुरक्षा अवश्य ही उत्पादन बढ़ाकर आर्थिक विकास में योगदान करेगी। भूमि सुधार में दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न कृषि उत्पादिता के सन्दर्भ में जोत आकार से सम्बद्ध है। छोटे व सीमान्त कृषकों को केवल भूमि की मल्कियत प्रदान करना पर्याप्त नहीं है। जोत का उपयुक्त आकार भी होना आवश्यक है। इसके द्वारा भी उत्पादन वृद्धि में सहायता प्राप्त होती है। अत: भूमि सुधार के कुछ

अन्य पहलू तथा चकबन्दी, सहकारी खेती एवं जोत सीमाबन्दी भी उत्पादन वृद्धि में योगदान कर आर्थिक विकास को द्रुत बनाते हैं।

**भारत में भूमि सुधार :** भूमि सुधार कार्यक्रमों की आवश्यकता और इसके समग्र आर्थिक विकास में योगदान को देखते हुए देश में राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही भूमि सुधारों की अनिवार्यता पर जोर दिया जाता रहा है। यथा 1947 के पूर्व ही जमींदारी व्यवस्था के विरोध में जनमत तैयार हो गया था। 1928 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने यह घोषित कर दिया था कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कांग्रेस के महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में है। इस प्रकार जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन और जमींदारी प्रथा के आधार पर 'जोतने वाले को जमीन' की व्यवस्था स्थापित करना स्वतंत्रता आन्दोलन का एक प्रमुख अंग बन गया था। स्वतंत्रता के तुरंत बाद इस समस्या के निराकरण हेतु सक्रिय कदम उठाये गये। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1948 में ग्रामीण सुधार समिति की स्थापना की जिसने कृषि सुधार के लिये महत्वपूर्ण सुझाव दिये। निष्कर्षात्मक रुप में समिति ने यह विचार प्रस्तुत किया कि भारतीय कृषि में मध्यस्थों का कोई स्थान नहीं होना चाहिये और भूमि की मिल्कियत कास्तकार को दे देनी चाहिये। भविष्य में उप-भूमि धारण प्रथा का निषेध होना चाहिये और यह सुविधा केवल नाबालिग बच्चों और नितांत अक्षम व्यक्तियों तक ही सीमित होनी चाहिये। इसलिये स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही इस दिशा में कार्यवाही आरम्भ कर दी गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद किये गये विभिन्न भूमि सुधार कार्यक्रमों, जिनका यहां उल्लेख किया गया है, से उत्पादन और उत्पादिता में वृद्धि हुयी।

**मध्यस्थता उन्मूलन :** स्वतंत्रता के बाद कृषि क्षेत्र में व्याप्त मध्यस्थों के उन्मूलन को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी। इस राष्ट्रीय आकांक्षा के अनुरुप राज्यों की विधान सभाओं द्वारा क्रमश: कानून बनाये गये। अधिकांश राज्यों में मध्यस्थता उन्मूलन का कार्यक्रम 1948 से 1954 की अवधि में लागू किया गया। जमींदारी उन्मूलन सन्नियमों की वैधता को भी चुनौती दी गयी तथा विभिन्न पक्षों के प्रति राज्यों के उच्च न्यायालयों और अंततः उच्चतम न्यायालय में मुकदमे दायर किये गये तथापि इन सन्नियमों को ही सामान्य वैधता प्रदान की गयी, जमींदारी उन्मूलन कार्यक्रम मुख्यतः जमींदारों की परिसम्पत्ति का राज्य द्वारा क्षतिपूर्ति देकर अधिग्रहण करने का कार्य था। मध्यस्थों की समाप्ति का कार्य 1948 में मद्रास के अधिनियम से आरम्भ हुआ इसके पश्चात् बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बम्बई आदि राज्यों ने भी कानून बनाये। यहां यह उल्लेखनीय है कि पश्चिमी बंगाल में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम सबसे बाद में 1954-55 में बनाया गया जबकि पश्चिमी बंगाल बिचौलियों की लम्बी श्रृंखला और कुप्रभावों से अत्यधिक प्रभावित था। सभी राज्यों में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम बन चुका है और मध्यस्थों के उन्मूलन का कार्य लगभग पूरा हो चुका है।

जमींदारी उन्मूलन की दिशा में सभी राज्यों में लागू किये गये अधिनियमों के फलस्वरुप लगभग 20 मिलियन कास्तकारों का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया और वे सामन्तवादी प्रथा के चंगुल से मुक्त हो गये। भारत में मध्यस्थ प्रथा यथा जमींदारी, जागीरदारी, इनाम देश के लगभग 40 प्रतिशत भू-भाग पर फैले हुये थे। इस कार्यक्रम से इनका उन्मूलन हुआ और कास्तकारों की समाजार्थिक स्थिति में सुधार हुआ। सरकार ने 670 करोड़ रुपये की क्षतिपूर्ति कर भूमि पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया इसके साथ-साथ सरकार ने बड़े भूमि खंडों, सामूहिक भूमियों और वनों पर भी अधिकार कर लिया। कृषि सुधार की दिशा में इस शक्तिशाली वर्ग का निषेध एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी तथा कृषि सुधार के इतिहास में यह एक अद्वितीय घटना रही है। मध्यस्थों के उन्मूलन और कास्तकारों को भूमि का स्वामित्व मिलने से कृषकों को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा मिली। इसके पूर्व मध्यस्थ प्रथा के कारण कृषि में उन्नति के लिये आवश्यक विनियोग नहीं हो पाता था और कृषि की उत्पादिता निम्न कोटि की बनी रहती थी। उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार के एक अध्ययन से पता चलता है कि जमींदारी उन्मूलन के कारण जोतों की संरचना समानता की ओर बढ़ी है और जमींदारी उन्मूलन ने व्यक्तिगत पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित किया है[3] यद्यपि बटाई की कुप्रथा पर मध्यस्थों के उन्मूलन का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ क्योंकि कानून में इसके निराकरण हेतु कोई व्यवस्था नहीं थी।

**पट्टेदारी में सुधार :** जमींदारी और रैयतवारी भूमि व्यवस्था के अधीन देश में पट्टेदारी कास्त प्रचलित रही है। इस प्रथा में छोटे कृषक भूमिहीन श्रमिक और कभी-कभी उपकृषक भी सम्मिलित हो जाते हैं। पट्टे पर कृषि कार्य करने वाले किसानों के तीन वर्ग रहे हैं। प्रथम स्थायी कास्तकार जिनके पट्टेदारी हक दाय योग्य स्थायी रहे हैं। उन्हें पट्टे की स्थिरता और सुरक्षा प्राप्त रहती है। इस कारण अंततः वे कृषि भूमि के स्वामी बन जाते हैं। स्थायी कास्तकार के अतिरिक्त इच्छित कास्तकार और उपकास्तकार रहे हैं। वर्ष 1953-54 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने यह अनुमान लगाया था कि सम्पूर्ण भारत में लगभग 20 प्रतिशत भूमि पट्टेदारी व्यवस्था के अंतर्गत थी। इन आंकड़ों में स्थायी कास्तकार की भूमि को सम्मिलित नहीं किया गया था क्योंकि स्थायी पट्टेदारों को भूमि-स्वामियों के समान अधिकार प्राप्त थे। भूमि व्यवस्था के इस प्रारूप में इच्छित कास्तकारों और उपकास्तकारों की स्थिति अत्यंन्त खराब थी। इन

कास्तकारों का भू-स्वामियों द्वारा बार-बार लगान में वृद्धि, बेदखली, बेगार आदि माध्यमों से शोषण किया जाता था । इन कास्तकारों का कृषि कार्य पूर्णतया भूस्वामियों की प्रसन्नता तक ही बना रह सकता था । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न राज्यों ने कृषि क्षेत्र के कमजोर किसानों के हितों की रक्षा के लिये पट्टेदारी सुधार कार्यक्रम बनाये ।

**लगान का नियमन :** स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व देश के विभिन्न भागों में लगान की दर अत्यन्त ऊंची थी और साथ-साथ लगान वसूली की अमानुषिक विधि भी प्रचलित थी । पट्टेदारों को किसी भी प्रकार लगान प्रदान करने के लिये प्रताड़ित किया जाता था । विभिन्न भागों में प्रचलित लगान उपज का 50 प्रतिशत व इससे भी कुछ अधिक था ।उस समय लगान निर्धारित करने में किसी वैचारिक आधार का सहारा नहीं लिया जाता था लगान या तो परंपरा के आधार पर लिये जाते थे व इनका निर्धारण मांग-पूर्ति की शर्तों द्वारा होता था । ब्रिटिश शासन के अंतिम चरण तक देश का ग्रामोद्योगी ढांचा चरमरा गया था । परिणामत: कृषि पर जनसंख्या का बोझ बढ़ जाने से मांग शक्तियां अधिक प्रबल हो गयीं और लगान बढ़ता गया । इन अंतर्विरोधों को समाप्त करने के लिये यह आवश्यक हो गया था कि लगान नियमन किया जाये । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न राज्यों ने लगान नियमन के लिये आवश्यक कानून बनाये हैं । यद्यपि अलग-अलग राज्यों में निर्धारित की गयी लगान दरों में विभिन्नता है तथापि वे एक निश्चित अंगीकृत मान के आस पास ही हैं ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में योजना आयोग की ओर से यह सुझाव दिया गया कि सम्पूर्ण देश में लगान का नियमन करके इसे कुल उपज का 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक भाग निश्चित किया जाना चाहिये, तदनुसार अधिकांश राज्यों में लगान नियमन की व्यवस्था कर दी गयी है । छठी पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि पंजाब, हरियाणा और आन्ध्रप्रदेश के कुछ भागों को छोड़कर अन्यत्र सब जगह लगान का अधिकतम स्तर कुल उपज का 20 से 25 प्रतिशत तक भाग निश्चित कर दिया गया हैं । राजस्थान,महाराष्ट्र और गुजरात में अधिकतम लगान कुल उपज का छठा भाग नियत किया गया है । उड़ीसा, बिहार, असम,मणिपुर और त्रिपुरा में कुल उपज का 25 प्रतिशत भाग लगान नियत किया गया है । मध्यप्रदेश में लगान भू राजस्व का गुणज है तथा लगान भू-राजस्व के दुगुने से चार गुने के बीच निश्चित किया गया है । योजना आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि उपज रुप में लगान निर्धारित करना कठिन है । इस कारण उपज लगान के स्थान पर नकद लगान निर्धारित किया जाना चाहिये ताकि लगान दर में होने वाले वार्षिक उच्चावचनों को समाप्त किया जा सके और जोतने वाले (वास्तविक कृषक) को उसके विनियोग का लाभ सुनिश्चित किया जा सके[5]। इससे यह स्पष्ट होता है कि लगान नियमन हेतु सकारात्मक कार्यवाही की जा चुकी है और लगान के सम्बन्ध में विद्यमान किसी भी शोषण और अनिश्चितता समाप्त करने के लिये प्रयास किया जा रहा है ।

**कास्तकारी सुरक्षा :** कास्तकारी असुरक्षा व बेदखली मध्यस्थ भूमि व्यवस्था में एक विशेष दोष था । कास्तकारी असुरक्षा के कारण कृषक जोत पर किसी भी गुणात्मक सुधार की दिशा में तटस्थ रहता था । कास्त का अधिकार नितांत अस्थाई होने के कारण कृषक की वैयक्तिक रूचि जोत पर अत्यन्त कम होती थी । कास्तकारी सुरक्षा के महत्व को बल प्रदान करते हुये योजना आयोग ने भूमि सुधारों की प्रगति के संदर्भ में अपनी रिपोर्ट में यह उल्लेख किया है कि "यह निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि लगान नियमन चाहे वह उत्पादन का अंश हो या नकद लिया जाय अथवा भू-राजस्व का कोई गुणज हो प्रभाव पूर्ण उस स्थिति में होगा जब कि कास्तकार पट्टेदारी की सुरक्षा प्राप्त कर सकता है ।" कास्तकारी सुरक्षा के लिये प्रत्येक राज्य में कानून लागू किये गये हैं । प्रत्येक राज्यों के जोत सुरक्षा कानूनों में यह व्यवस्था की गयी है कि पट्टेदारों को उनकी जोत से तब तक बेदखल न किया जाये जब तक कि वे लगान के भुगतान के दोषी न ठहराये जांय । इसके अतिरिक्त यदि कास्तकार भूमि का दुरुपयोग करता हो, कृषि कार्य करने में अपनी असमर्थता प्रकट करे और यदि जोत का आकार निर्धारित मान से अधिक हो तब उसे बेदखल किया जा सकता है । भूस्वामी स्वयं कास्त के लिये भी अपनी भूमि वापस ले सकता है परन्तु भू-स्वामी भी एक निश्चित आकार तक ही स्वयं कास्त के लिये भूमि रख सकता है । कास्तकारी की समस्या तब ही उत्पन्न होती है जब कोई भू-स्वामी भूमि को पट्टे पर उठाता है । इसलिये यह प्रयास किये गये कि पट्टे पर भूमि देने की व्यवस्था ही प्रतिबन्धित हो जाये ।

कास्तकारी सुरक्षा की दिशा में भूमि सुधार कार्यक्रमों का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष कास्तकारों के लिये भूमि स्वामित्व अधिकार प्रदान करने की व्यवस्था करना है । भूमि व्यवस्था में न्याय प्रदान करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास है । दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह व्यवस्था की गयी कि उन जोतों पर जिन्हें भू-स्वामी पुन: नहीं प्राप्त कर सकते कास्तकार और सरकार के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाये । इस आकांक्षा के अनुरुप राज्यों ने कानून लागू किये हैं जिनके अनुसार पट्टेदार कृषक भू-स्वामी को एक निश्चित क्षतिपूर्ति या भू-राजस्व का एक निश्चित गुणज प्रदान कर, भू-स्वामी बन जाता है । राज्य से उसका सीधा सम्बन्ध हो जाता है और इसे पूर्व भू-स्वामी इसे वापस नहीं ले सकता है । पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश,उड़ीसा,राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक आदि राज्यों में इसके लिये कानून बनाये जा चुके हैं । योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार लगभग 3 मिलियन कास्तकार और बटाई पर खेती करने वालों को इस व्यवस्था के अधीन लगभग 7

मिलियन एकड़ भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया जा चुका है ।

**जोतों की सीमाबन्दी :** समतावादी समाज की स्थापना का विचार भारतीय आर्थिक नीति में आरंभ से ही निहित रहा है। इस कारण आरम्भ से ही सामाजिक व आर्थिक असमानतायें घटाने के लिये प्रयास किया जाता रहा है और किसी भी प्रकार की असमानता का निषेध नीति निर्धारण का मूल प्रेरक तत्व रहा है । इसी परिकल्पना के अंतर्गत जोत सीमाबन्दी की नीति बनाई गयी । इस नीति के दो प्रधान उद्देश्य थे । भूमि स्वामित्व में व्याप्त असमानता को घटाना जिससे क्रमश : सहकारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास हो और भूमिहीन लोगों के लिये भूमि का पुनर्वितरण किया जा सके । प्रथम पंचवर्षीय योजना में सिद्धान्तत : इस नीति को मान लिया गया था और राज्य सरकारों को यह स्वतंत्रता दी गयी थी कि वे अपने ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को देखते हुये जोत बन्दी सीमा निर्धारण करें । भूमि सम्बन्धी आकड़ों को एकत्र करने का प्रयास किया गया । 22 राज्यों ने कृषि जोतों की गणना का कार्य किया और 1953-54 के भूमि सम्बन्धी आंकड़े एकत्र किये । अंततः द्वितीय पंचवर्षीय योजना से सीमाबन्दी नीति को क्रियान्वित करने के प्रयास किये गये । सामान्य रुप से जोत सीमाबन्दी निर्धारण के दो पक्ष हैं । प्रथम बड़े कृषकों की जोत के आकार में कमी करना और द्वितीय अतिरिक्त भूमि वितरण द्वारा अत्यन्त छोटी जोतों वाले भू-स्वामियों और भूमिहीनों को भूमि प्रदान करना । आरंभ से लेकर अब तक जोत सीमाबन्दी के क्षेत्र में हुयी प्रगति का विश्लेषण चार आधारों –सीमाबन्दी लागू करने की इकाई, जोत की अधिकतम सीमा, छूट की अधिकतम् सीमा और अतिरिक्त घोषित भूमि की उपलब्धि और उसका वितरण, पर किया गया। विभिन्न राज्यों में इसी दृष्टि से अंतर भी रहा है ।

जोत सीमाबन्दी के संदर्भ में 1972 के नियम के पूर्व सभी राज्यों अधिकांशत : व्यक्ति को सीमाबन्दी की इकाई माना गया था । इस आधार पर परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने पास एक निश्चित आधार तक भूमि रख सकता है । परिणामत : जोत सीमाबन्दी के बाद भी प्रत्येक परिवार के पास बड़ी-बड़ी जोतें बनी रहीं और लोग सीमाबन्दी की सीमितता से बच जाते थे । इसी प्रकार 1972 के कानूनों के पूर्व जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण बहुत ऊचें स्तर पर किया गया था तथा उच्चतम और निम्नतम सीमाओं के बीच अत्यधिक अंतर था । विभिन्न राज्यों ने अपनी परिस्थिति के अनुरुप सीमा निर्धारण किये थे उस कारण विभिन्न राज्यों द्वारा निर्धारित अधिकतम सीमा में भी अंतर था । उदाहरणार्थ अधिकतम जोत सीमा का विस्तार प्रति व्यक्ति आन्ध्रप्रदेश में 27 से 324 एकड़ तक, राजस्थान में 22 से 326 एकड़ तक, गुजरात में 19 से 132 एकड़ तक और पंजाब में 30 से 80 एकड़ तक था । इस प्रकार आन्ध्रप्रदेश में 5 व्यक्तियों का एक परिवार 324x5=1620 एकड़ तक जमीन अपने पास रख सकता था । पूर्व के जोत सीमाबन्दी कानूनों में भूमि के लिये विभिन्न प्रकार की छूट की व्यवस्था थी, यथा उत्तरप्रदेश में 20 प्रकार की भूमियां, केरल में 17 और पंजाब में 13 प्रकार की भूमियां छूट से युक्त थीं । छूट प्रदान की गयी इन भूमियों में बागान क्षेत्र, सहकारी कृषि फार्म धर्मार्थ संस्थाओं के अंतर्गत आने वाली भूमियां आदि सम्मिलित थीं । इन छूटों के कारण लोगों ने भूमि को परिवार के अन्य व्यक्तियों के नाम हस्तांतरित करने, बेनामी हस्तांतरण और छूट वाले विशिष्ट प्रयोगों में हस्तांतरित करने लगे । परिणामतः अत्यन्त कम भूमि अतिरिक्त घोषित की जा सकी थी । इन विसंगतियों और अल्प निष्पादन के कारण यह आवश्यक हो गया था कि जोत सीमाबन्दी पर पुनर्विचार किया जाये ।

जोत सीमाबन्दी पर पुनर्विचार और जोत सीमाबन्दी की नवीन योजना बनाने के लिए एक केन्द्रीय भूमि सुधार समिति 1971 का गठन किया गया । जोत सीमाबन्दी पर पुनर्विचार समिति पूर्व अधिनियमों की विसंगतियों के अतिरिक्त इस कारण भी आवश्यक थी क्योंकि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तक हरित् क्रान्ति का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था । उत्पादन, उत्पादिता और कीमतें बढ़ने के कारण कृषकों की विशेषकर बड़े कृषकों की आय बढ़ने लगी थी । अतः उक्त समिति ने राज्य सरकारों के साथ विचार-विमर्श किया और जोत सीमाबन्दी के लिये पृथक महत्वपूर्ण निर्णय लिये । इसके निर्णयों ने जोत सीमाबन्दी के पुराने कानूनों की विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया साथ-साथ भूमि की बढ़ती हुई मांग को देखते हुये अपेक्षाकृत नीची जोत सीमा निर्धारित की । इसी सन्दर्भ में 23 जुलाई 1972 को मुख्य मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया गया । सम्मेलन में हुये विचार विमर्श के आधार पर जोत सीमाबन्दी के लिये नवीन अधिनियम बनाया गया । 1972 के बाद जोत सीमाबन्दी से सम्बद्ध विभिन्न आयामों का विवरण और तत्सम्बद्ध निष्पादन निम्नवत रहा है ।

वर्तमान सीमाबन्दी नीति के अंतर्गत अधिकतम जोत सीमाबन्दी के लिये परिवार को आधार बनाया गया है और परिवार की संकल्पना में पति-पत्नी तथा तीन बच्चों को सम्मिलित किया गया है । नवीन नीति के अंतर्गत अधिकतम् सीमा का स्तर और विस्तार घटा दिया गया है । भूमि की उर्वरा शक्ति, स्थिति और सुविधा देखते हुये सिंचित भूमियों के लिये जोत की सीमा 10 से 18 एकड़ निश्चित की गयी है । जिन भूमियों पर सिंचाई की सुविधा केवल एक फसल के लिये सीमित थी उस पर अधिकतम सीमा 27 एकड़ निर्धारित की गयी थी । अन्य सभी प्रकार की भूमियों के लिये जोत की अधिकतम सीमा 54 एकड़ निर्धारित की गयी । नवीन जोत सीमाबन्दी के अन्तर्गत छूट वाली भूमियों का प्राविधान भी अत्यन्त सीमित कर दिया गया । नवीन जोत सीमाबन्दी नीति नागालैंड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम जहां भूमि स्वामित्व समूहों

के पास है,को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में लागू कर दी गयी है । मार्च 1980 तक देश में 27.78 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि का अनुमान किया गया है । इसमें से 15.74 लाख हैक्टेयर भूमि को अतिरिक्त घोषित किया गया है को इसमें से 956 लाख हैक्टेयर भूमि सरकार ने अपने अधिकार में ले ली है । अधिकार में ली गयी भूमि में से 6.79 लाख हैक्टेयर भूमि वितरित की जा चुकी है । वितरित भूमि से कुल 11.54 लाख ग्रामीण भूमिहीनों को लाभ पहुंचा है । इसमें से 6.13 लाख लाभान्वित लोग अनुसूचित जाति और जनजाति परिवारों से थे ।

**भूमि सुधारों की अपर्याप्तता :** राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरुप स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद आरंभ किये गये भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर निश्चित रुप से सकारात्मक रहा है । भूमि प्रणाली अब पर्याप्त रुप से सरल हो गयी है और भूमि सम्बन्धों में एकत्व व समानता स्थापित हो गयी है । विभिन्न भू-धारण प्रणालियों के स्थान पर अब दो-तीन भूस्वामित्व के ढंग विद्यमान हैं । कृषक का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है । स्वतंत्रता के समय देश में जोत की संरचना में अत्यधिक असमानता विद्यमान थी । उस समय ग्रामीण जनसंख्या के 4 प्रतिशत बड़े भूस्वामी 50 प्रतिशत भूमि के स्वामी थे । इसके विपरीत तीन-चौथाई ग्रामीण जनसंख्या केवल 16 प्रतिशत भूमि की मालिक थी । बाद की स्थिति में इसमें उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है । 1971 की कृषि गणना के अनुसार देश के लगभग 4 प्रतिशत बड़े कृषकों के पास कुल कृष्य भूमि का 30.9 प्रतिशत भाग था । लगभग 70 प्रतिशत जोतें छोटे आकार की हैं जिनके पास कुल भूमि का लगभग 21 प्रतिशत भाग था । पट्टेदारी की सुरक्षा व मध्यस्थों के उन्मूलन से भारतीय कृषक के सामाजिक व आर्थिक स्तर में सुधार हुआ है । इन संस्थागत परिवर्तनों से वैज्ञानिक कृषि को प्रोत्साहन मिला है । कृषि उत्पादन व उत्पादिता बढ़ी है ।

भूमि सुधार के विभिन्न प्रावधानों की उपलब्धि का यदि देश की आवश्यकताओं के आधार पर आकलन किया जाता है तब प्रतीत होता है कि उपलब्धियां अभी लक्ष्य से दूर हैं । कई समितियों और अध्ययनों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि विभिन्न भूमि सुधार कार्यक्रमों का निष्पादन लक्ष्य की तुलना में अत्यन्त कम रहा है । समग्र आकलन यह रहा है कि स्वतंत्रता के बाद अपनाये गये भूमि सुधार कार्यक्रम कृषि संरचना में अपेक्षित सुधार लाने में असफल रहे हैं[7]। दूसरी ओर भूमि सुधार कार्यक्रमों को अपेक्षित स्तर तक लागू करना समय की अनिवार्यता है । सामान्यत : यह माना जाता है कि भूमि सुधार कानूनों की अंतर्निहित विसंगतियां और उनके क्रियान्वयन पर शिथिलता भूमि सुधार के परिणाम नहीं दे सके । भारत में बड़े उत्साह और प्रचार के साथ मध्यस्थता उन्मूलन का कार्य किया गया । परन्तु खुदकाश्त के नाम ततकालीन जमींदारों और सामन्तों ने कृषकों को बेदखल कर भूमि को अपने कब्जे में कर लिया । वे आज के पूंजीपति काश्तकार बन गये हैं । आधुनिक विकास में अन्य कृषिगत सुविधाओं का उपयोग कर वे अपनी सम्पन्नता बढ़ाने में सफल हुये है । परिणामत : बटाई की कुप्रथा और अनुचित लगान वसूली देश के विभिन्न भागों में अत्यधिक प्रचलित है । इस मौखिक काश्त के चलते प्रभावित क्षेत्रों पर अधिक उपज सुधार की अपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

जोत सीमाबन्दी के पुराने नियम स्वयं में इतने उदार थे कि उनसे किसी आधिक्य की वास्तविक संभावना नहीं थी । जोत सीमा निर्धारण की नवीन नीति अवश्य ही समस्या तक पहुंचने का प्रयास करती है । परन्तु इसका क्रियान्वयन अत्यन्त मंद है । बड़े भू-स्वामी आज ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अपना दबाव बनाये रखने में सफल हैं उन्हें कोई अप्रसन्न कर सकने की स्थिति में नहीं है । साथ-साथ यह भी तर्क दिया जाता है कि नगरीय क्षेत्र में यदि एक ओर झुग्गी झोपड़ियों की संख्या बढ़ रही है, फुटपाथ और अनाथालयों में रहने वालों की संख्या बढ़ रही है । दूसरी ओर विलासी उपभोग करने वालों की संख्या भी बढ़ रही है । महलों और झोपड़ियों का अन्तर बढ़ता जा रहा है तो वहां भी सम्पत्ति और आयगत अधिकतम सीमा लगायी जानी चाहिये । जो भी हो ग्रामीण क्षेत्र में भूमि संरचना का स्वभाव लगभग पूर्ववत् बना है । सतत् उपादेय और ह्रास रहित भूमि संसाधन की मांग 'भूमि-क्षुधा' बड़े कृषकों में बढ़ती जा रही है । यह देखा जा रहा है कि नगर स्थित पूंजीपति ग्रामीण क्षेत्र में बड़े-बड़े कृषि फार्म क्रय कर रहे हैं जिसका प्रयोग सामाजिक प्रतिष्ठा, आमोद-प्रमोद और आधिक्य अर्जन के लिये करते हैं । इनके कारण सीमान्त कृषकों और भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़ रही है ।

निर्विवाद रुप से संस्थागत परिवर्तन वैज्ञानिक कृषि और आर्थिक विकास की पूर्वपेक्षा है । इससे ही नवीन कृषि निवेशों के लिये प्रोत्साहन मिलता है । इसलिये जोत आकार, काश्तकारी दशा, स्वामित्व हस्तांतरण के आधार पर भूमि नीति का एक राष्ट्रीय प्रारुप बनना चाहिये । इसमें विशेष चरित्र वाली भूमियों व क्षेत्रों को ध्यान में रखने पर किसी विसंगति की संभावना न रहेगी । सम्प्रति यदि भूमि सुधार के लिये बनाये गये विद्यमान कानूनों का ही कड़ाई के साथ पालन किया जाये जिसके लिये सबल राजनीतिक इच्छा अनिवार्य है तो इससे भूमि सुधार प्राविधानों में रिसाव समाप्त होगा और सामाजिक न्याय के साथ विकास के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता मिलेगी । □

सन्दर्भ :


1. योजना आयोग, भारत सरकार : छठी पंचवर्षीय योजना, पृ. 114
2. योजना आयोग, भारत सरकार : छठी पंचवर्षीय योजना, पृ. 114
3. बलजीत सिह एवं श्रीधर मिश्र : ए स्टडी आफ लैंड रिफार्म इन यू. पी.

4. योजना आयोग, भारत सरकार : छठी पंचवर्षीय योजना, पृ 114.
5. योजना आयोग, भारत सरकार : पांचवी पंचवर्षीय योजना, पृ. 130
6. योजना आयोग, भारत सरकार : प्रोग्रेस आफ लैंड रिफार्म
7. योजना आयोग, भारत सरकार : रिपोर्ट आफ द टास्क फोर्स आन एग्रेरियन रिलेशन्स

**अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,**
**इलाहाबाद डिग्री कालेज,**
**इलाहाबाद**

# वह भूमि-स्वामी बना

सागर जिले के कुल्हाड़ी गांव का गम्भीरा हरिजन अपनी पत्नी एवं छः बच्चों के बड़े परिवार का भरण-पोषण बीड़ी बनाकर करता था। उसके साथ इस काम में उसकी पत्नी तथा दो बड़े बच्चे भी उसकी सहायता करते थे। इसके बावजूद भी दो वक्त के खाने का प्रबंध बड़ी मुश्किल से कर पाते थे। कपड़ों के नाम पर तो फटे-पुराने चीथड़े ही अंग ढकने के लिए थे। एक बार गम्भीरा ने सुना कि तहसीलदार साहब तथा अन्य जनप्रतिनिधियों की कमेटी गांव की अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन गरीब व्यक्तियों को बांटने आयी है। उसने भी हाथ जोड़कर प्रार्थना की। कागजी कार्रवाई हुई, परन्तु गम्भीरा को कुछ भी हाथ नहीं लगा। लेकिन उसका भाग्य अच्छा था। 19 नवम्बर,1985 को जिलाध्यक्ष, सागर का कैंप उसके गांव में लगा। भूमिहीन हरिजनों तथा गरीब व्यक्तियों को अतिरिक्त भूमि के वितरण के प्रकरण पर विचार किया गया। गम्भीरा ने अपनी स्थिति से जिलाध्यक्ष को अवगत कराया। उसने उस शासकीय भूमि का वह भूभाग भी दिखाया जिस पर सागर के कुछ व्यक्तियों द्वारा अवैध कब्जा करके ईंटों का कारोबार किया जाता था। वह तीन एकड़ छोटे घास की जमीन कृषि के लिए उपयुक्त थी। जिलाध्यक्ष महोदय द्वारा गम्भीरा की बात पर विचार करके 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत उसे अतिरिक्त भूमि ईंटों सहित दे दी गई।

वह दिन गम्भीरा एवं उसके परिवार के लिए बहुत ही खुशी का दिन था। भूमिहीन से आज वह भू-स्वामी बन गया था। उसके सामने चुनौती थी कठिन परिश्रम करके भूमि को कृषि-योग्य बनाने की। बीड़ी के काम से जब फुर्सत मिलती परिवार के सभी सदस्य जमीन के विकास कार्य में लग जाते। गांव वाले उसके परिश्रम को देखकर दंग थे। खरीफ की फसल में उसने सोयाबीन, धान और तिल बोई है। बारिश अच्छी होने से उसको अच्छी फसल की आशा है। यही नहीं उसने वन विभाग से वृक्षों की पौध लेकर अपने खेत की मेड़ों पर लगा दी है। उसका कहना है कि जलाऊ लकड़ी की परेशानी उससे दूर होगी तथा बारिश में मिट्टी का कटाव कम होगा। गम्भीरा को अब विश्वास है कि वह अब अपने शेष जीवन में अपना पारिवारिक दायित्व अच्छी तरह से निभा सकेगा।

**क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी**
**सागर** (म.प्र.)

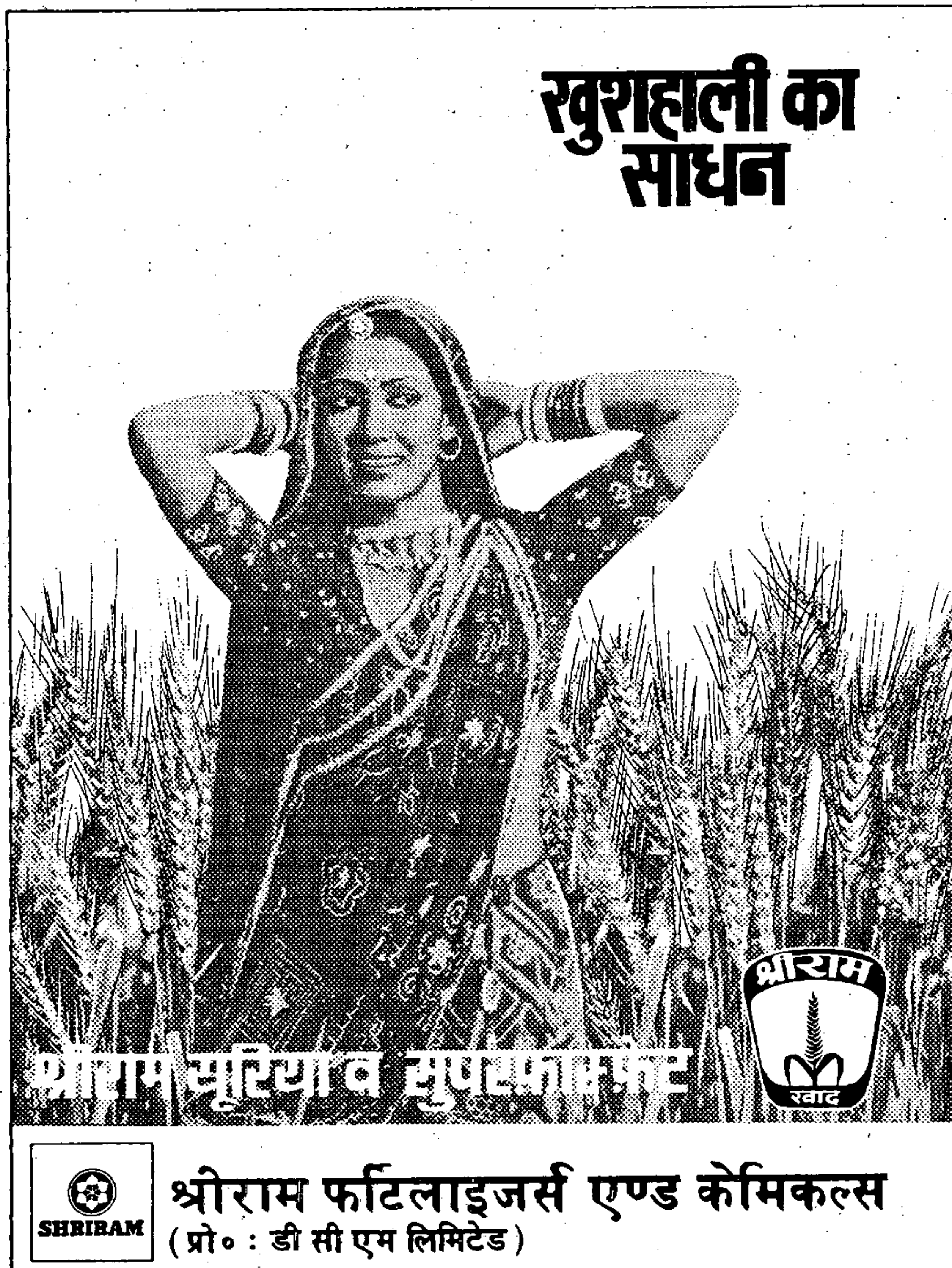
खुशहाली का साधन
श्रीराम यूरिया व सुपरफास्फेट
श्रीराम
खाद
SHRIRAM
श्रीराम फर्टिलाइजर्स एण्ड केमिकल्स
(प्रो० : डी सी एम लिमिटेड)

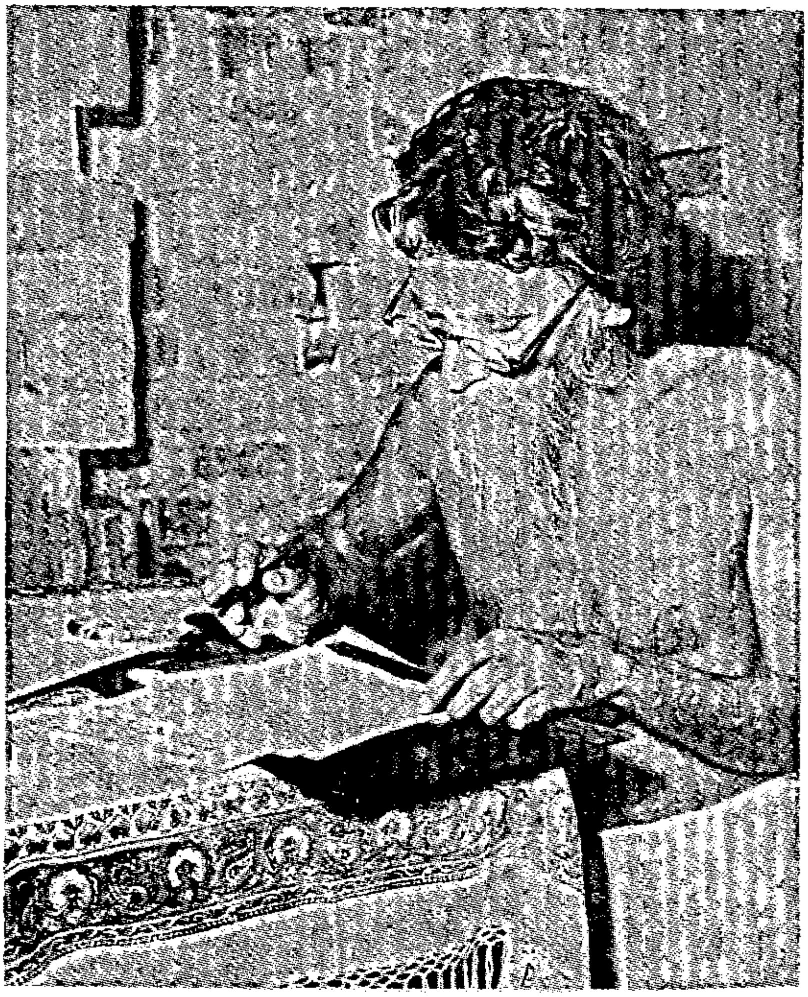

"पुराने समय में, जब भी देश में विपत्ति आती थी तो हमारे पूर्वज यज्ञ करते थे । मैंने भी यज्ञ करने का निश्चय किया, इसलिए मैं यह भूदान का प्रयोग कर रहा हूं । जिस प्रकार हम अपनी आहूति यज्ञ में डालते हैं, उसी भावना से हमें भूमिहीन निर्धन लोगों को भूमि का दान देना चाहिए ।"

—विनोबा भावे

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN)
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

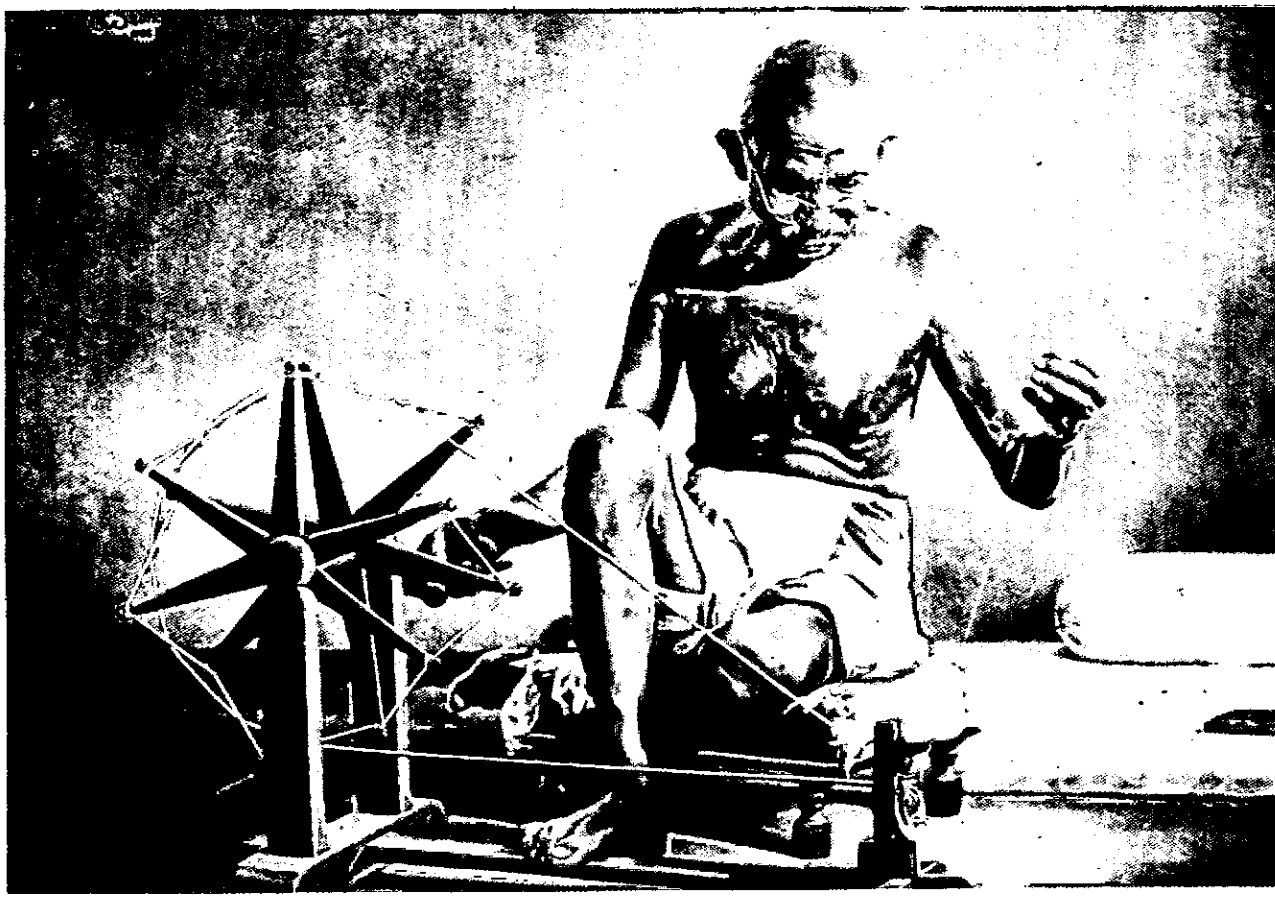

"किसान, चाहे वह भूमिहीन मजदूर हो या मजदूरी करने वाला भू-स्वामी, उसका स्थान सबसे ऊपर है । यह भूमि का असली बेटा है और भूमि उसी की होनी चाहिए, किसी निष्क्रिय भूस्वामी या जमींदार की नहीं । परन्तु अहिंसक तरीके से काश्तकार जमींदार को ताकत से बेदखल नहीं कर सकता । उसे इस तरह से काम करना चाहिए कि जमींदार के लिए उसका शोषण करना असम्भव हो जाए ।"

—महात्मा गांधी

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
पंजाब नेशनल प्रैस बी-11/2 ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया फेस-2
नई दिल्ली-110020 द्वारा मुद्रित